क्या मुर्दे सुनते हैं ?



मुअल्लिफ
अब्दुल्लाह बहावलपुरी



बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

मुक़द्दमा

देवबन्दीयत लिखने के बाद इस बात का ख्याल आया कि क्यों न उसकी तल्खीस की जाए और सिर्फ उलमा ए देवबन्द के अक़ाइद का जिक्र किया जाए। बल्कि जो अकाइद किताब देवबन्दीयत में जिक्र नहीं हो सके थे। उनका भी तज़किरा किया जाए। ताकि कारिईन (पाठक) उनके सारे नही तो अक्सर अक़ाइद ही से वाकिफ़ हो जाएं। यही जज़्बा अकाइद उलैमा ए देवबन्द लिखने की वजह बना।

किताब की शुरूआत से पहले हम उन्ही की जुबानी उनके मसलक की पहचान करा देना बेहतर समझते हैं।

मौलाना खलील अहमद साहब सहारनपुरी लिखते हैं– हम और हमारें मशायख ओर हमारी सारी जमाअत बहम्दुलिल्लाह फुरूआत (मसाइल) में मुकल्लिद है। मुक्तदा ए खल्क़ इमामे आज़म अबू हनीफा नौमान बिन साबित रजि. के और उसूल और एतेकादात में पैरू हैं इमाम अब्दुल हसन अशअरी और इमाम अबू मन्सूर मातुरीदी रजि. के। तरीक़–ए–सूफिया में हम को इन्तेसाब हासिल हैं सिलसिला ए आलिया हज़रत नक्श बन्दिया और तरीक़ा ज़किया मशायखे चिश्त और सिलसिला बहिया हज़रात क़ादरिया और तरीका मुरजिया मशायख सहरवर्दिया रजि. के साथ।" (अल मुहन्नद अलल मुफ़न्नद पेज–22)

मौलाना मोहम्मद युसुफ बिन्नोरी साहब फरमाते है–अकाबिर देवबन्द का मसलक वही रहा है कि हदीस के बाद फ़िक्ह व इज्तिहाद के पेशेनजर फकीहे उम्मत हज़रत इमाम अबू हनीफा को इमाम मान लिया जाए और साथ ही साथ उलूमें तसव्वुफ़ और उलूम तज़किया कुलूब का सही इमतेजाज़ किया जाए। अगर एक तरफ इब्ने तैमिया की जलालते कद्र का एतेराफ़ हो तो दूसरी तरफ शैखे अकबर मुहिय्युद्दीन इब्ने अरबी के कमालात को भी माना जाए। इमाम अबू हनीफा की तक़लीद और इत्तेबाअ

सुन्नत) की अमानत बाद में आने वाली पीढ़ी के सच्चे लोग (अपने कंधो पर) उठायेंगे और उसमें ज्यादती करने वालों की तहरीफ़, बातिल परस्तों की ज्यादतियाँ और जाहिलों की गलत तावीलात दूर करेंगे) की अमली तरजुमानी करते हुए किताब व सुन्नत के खिलाफ़ की जाने वाली शऊरी और गैर शऊरी साज़िशों को बेनकाब किया और दौरे सलफ़ की निथरी हुई तौहीद और आप सल्ल. की सुन्नते सहीहा को उसकी असली शक्ल में इंसानियत के सामने रखा। (मिशकात अल मसाबीह – किताबुल इल्म)

"सेमाअ ए मौता" (मुर्दे सुनते हैं) का गुमराहकुन अकीदा हुनूद के अवतार के अकीदे और मक्का के मुश्रिकीन (हम उनको इसलिए पूजते हैं कि वो हमें अल्लाह से क़रीब कर दें)के मुश्रिकाना तसव्वुर की पैदावार है।

इसलिए कहा जाता है कि बुजुर्गानेदीन व अम्बिया किराम अपनी कब्रों में जिन्दा हैं, पुकारने वाले की पुकार सुनते हैं और मुश्किल कुशाई व हाजत रवाई के इख्तियारात भी उन्हें हासिल हैं। इसलिए मज़ारात पर हाज़िरी दी जाती है, मुरादें मांगी जाती हैं और सज्दे व तवाफ करके अल्लाह के बन्दों को अल्लाह का शरीक बनाया जाता है। ये तमाम तसव्वुरात "सेमाअ ए मौता" के अकीदे का नतीजा हैं।

सलफ़ सालिहीन यानि सहाबा रजि. और ताबईन रह. के पाक दौर में ऐसे शिर्किया अक़ाइद का वजूद न था। तअज्जुब है कि ऐसे नज़रियात को शरई तौर पर साबित करने की कोशिश की जाती है जो नज़रियात दुनिया और दीन दोनों ही जगह नाकाम रहने वाले हैं।

बात–चीत की शक्ल में लिखी गई यह छोटी सी किताब 'मसला मुर्दे सुनते है' के हर पहलू पर रोशनी डालती है, यह कुरआन और अहादीस और अक्ले सलीम की रोशनी में इस मसले को समझाने व सुलझाने की कामयाब कोशिश है।

मौअल्लिफ़ का लहजा कहीं–कहीं तल्ख हो गया है जो हमारे मिजाज और पसन्दीदा मेअयार पर पूरा नहीं उतरता। लेकिन मोअल्लिफ का उज़्र यह है कि जब एक दर्दमन्द मुस्लिम इस्लाम की सही सूरत

आईये अब ज़रा उलैमा ए देवबन्द के अकाइद को देखा जाए–

वहदतुल वुजूद

देवबन्दीयों के पीर व इमाम हाजी इमदादुल्लाह महाजिर मक्की (जिनकी बड़े–बड़े देवबन्दी उलमा ने बैअत की। जैसे– मौलाना मोहम्मद कासिम नानोतवी साहब , मौलवी रशीद अहमद गंगोही साहब वगैरह) जिनकी तारीफ तब्लीगी जमाअत के अमीर ज़करिया साहब इन लफ़्जों में करते है"हाजी साहब आलिम गर थे।" (आप बीती–7 पेज–153) हाजी साहब खुद भी कासिम नानोतवी साहब और रशीद अहमद गंगोही साहब की तारीफ़ करते हुए अपने अकीदतमंदों को उनकी सोहबते बाबरकत से फायदा उठाने का हुक्म देते है। (अल मुहन्नद अलल मुफन्नद–पेज–06)

(a) हाजी साहब मसअला वहदतुल वुजुद के बारे में कहते हैं– "मसला वहदतुल वुजूद हक़ व सही है। और जिस शख्स ने इस मसअले में सबसे पहले गौर किया वह शैख मुहिय्युद्दीन इब्ने अरबी है। (शमाइमे इमदादिया–पेज–32) शैख इब्ने अरबी का अकीदा है "मखलूक का वुजुद दर असल खालिक का वुजूद है।" (शरह तहाविया पेज–556) "हर चीज़ में उस (अल्लाह) की निशानी है जो इस बात को साबित करती है कि वह उसका ऐन (अक्स) है।" वुजूद में अल्लाह के सिवा कोई नहीं।" (फतुहाते मक्किया जिल्द–1 पेज–272) हाजी साहब कहते हैं। "नबी सल्ल. वासिल ब हक़ (अल्लाह में ज़म) है। इसलिए इबादुल्लाह (अल्लाह के बन्दे) को इबादुर्रसूल (रसूल का बन्दा) कह सकते है।" इस मसअले में अशरफ अली थानवी साहब भी हाजी साहब की सी राय रखते हैं। (शमाइमे इमदादिया–पेज–71) हालांकि अल्लाह तआला फरमाता है "किसी नबी के लिए यह लायक नहीं कि अल्लाह उसे किताब व हिकमत और नबुवत दे फिर वह (लोगों से) यह कहे कि अल्लाह के बजाए मेरे बन्दे बन जाओ। हाजी साहब कहते है "आबिद और माअबूद में फर्क करना शिर्क है।" (शमाइमे इमदादिया पेज–37) और बायज़ीद बुस्तामी और मन्सूर हलाज ने 'सुब्हानी मा अअज़माशानी' (में पाक हूं मेरी शान

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

अस्सलामु अलैयकुमव रहमतुल्लाह!

व अलैकुम अस्सलाम व रहमतुल्लाहि व बाराकातुहू!

अ – कैसे तशरीफ लाए ?

ब – एक मसला मालूम करना है।

अ – फरमाइये! क्या मसला है ?

ब – मुर्दे सुनते हैं या नहीं ?

अ – अरे भई! यह भी कोई मसला है?यह तो आज़माने की बात है। आप किसी मुर्दे से बात करके देखलें। आपको पता चल जायेगा कि मुर्दे सुनते हैं या नहीं? वह मुर्दा ही कब होगा जो सुने। सुनना तो जिन्दों का काम है न कि मुर्दों का। भाई जो मर जाता है वह इस दुनिया से चला जाता है और बरज़ख में पहुंच जाता है। इस दुनिया के ऐतेबार से वह मुर्दा है। न सुनता है और न जिन्दा है लेकिन बरज़खी जिन्दगी इस दुनियावी जिन्दगी से अलग है। ऐसा नहीं हो सकता कि हम बरज़ख (मौत के बाद से कयामत के दिन उठने से पहले तक की जिन्दगी) वालों को पुकारे और वह हमारी सुनें।

ब – वह बोलेगा तो नहीं

अ – बोलेगा क्यों नहीं?अगर सुनेगा तो जरूर बोलेगा।

ब – मुर्दे बोलते तो नहीं

अ – क्यों नहीं

ब – उनमें कोई जान है जो बोलें

अ – जब जान नहीं है तो सुन कैसे लेते हैं? क्या बोलने के लिए जान की जरूरत है और सुनने के लिए नहीं?

ब – जरूरत तो सुनने के लिए भी है लेकिन सुना है मुर्दे सुनते तो हैं पर बोलते नहीं।

अ – अगर बोलते नहीं तो सुनते किस लिए हैं? अल्लाह ने

इन्सान में सुनने की ताकत पैदा ही इसलिए की है कि सुन कर जवाब दे, अगर जवाब ना देना हो तो सुनने का क्या फायदा? अल्लाह तआला फ़रमाता है :– जवाब तो वो देते हैं जो सुनते हों और मुर्दे पुकारने वाले की पुकार को हरगिज़ नहीं सुन सकते और ना जवाब ही दे सकते हैं उनको अल्लाह (कयामत के दिन) उठायेगा फिर उसकी तरफ लौटाये जायेंगे। ( )

हकीकत यही है कि सुनना है ही बोलने के लिए और बोलना सुनने के लिए है, इनमें से अगर एक न हो तो दूसरे का भी कोई फायदा नहीं, यह दोनो एक दूसरे के लिए जरूरी हैं।

ब – यह सब तो मैं नहीं जानता, लेकिन मैंने सुना यही है कि मुर्दे सुनते हैं।

अ – किस से सुना है?

ब – अपने पीर साहब से सुना है।

अ – क्या आपके पीर साहब ने किसी मुर्दे से बात की है?

ब – यह तो मुझे नहीं पता लेकिन उनका यह कहना है कि मुर्दे सुनते हैं।

अ – भाई आप पीरों के कहने पर ना जायें इसलिए कि मुर्दो की कब्रों पर नज़रानों के नाम से पैश किये जाने वाले जाईज़ व नाजाईज़ सदकात ही उनका सहारा है। मुर्दों को सवाब के लिए किये जाने वाले सारे पार्सल और मनीऑर्डर उन्हीं के ज़रिये जाते हैं। खत्म और कुल वगैरह की बिल्टियां वह करते हैं। मुर्दों की रूहें उनके पास आती जाती हैं।अगर आप हकीकत जानना चाहते हैं तो खुद किसी मुर्दे से बात करके देखलें। आप जान जायेंगे कि वह सुनते हैं या नहीं?

ब – हमारे पीर साहब तो बहुत बड़े आलिम हैं, बड़े–बड़े मदरसों से वह फ़ारिग हैं।

अ – ज़रूर फ़ारिग़ होंगे तभी तो ऐसी बात कहते हैं।

ब – वह कहते हैं कि हदीसों में आता है कि मुर्दे सुनते हैं।

अ – हदीसों में तो यह भी आता है कि मुर्दे बोलते हैं, बल्कि मुर्दे का बोलकर बताना तो कुरआन से भी साबित है, क्या वह मुर्दे के बोलने के भी कायल हैं?

ब – कुरआन में मुर्दो के बोलने का सबूत कहां है।

अ – सूरे यासीन में अल्लाह तआला एक मुर्दे ही का कौल नकल करता हे कि जब वह जन्नत में दाखिल हुआ तो कहने लगा काश मेरी कौम को भी यह बात मालूम हो जाती कि मेरे रब ने मुझे बख्श दिया और इज़्जत वाले लोगों में मुझे शामिल कर लिया (यासीन – आयत–26 से 27)

इसी तरह पहले पारे में भी मुर्दे के बोलने का वाकिआ है। जहां गाय को ज़बह करने का हुक्म है।

(बक़रा–आयत –73)

ब – वह तो गाय के गोश्त का टुकडा मारा था। जिससे मुर्दे ने ज़िन्दा होकर अपने कातिल के बारे में बताया था।

अ – क्या गाय का गोश्त मारने से मुर्दा जिन्दा हो जाता है? और बोलने भी लग जाता है अगर ऐसा है तो आप भी तजुरबा कर के देख लें।

ब – यह तो अल्लाह की कुदरत है। हम यह कैसे कर सकते हैं।

अ – अगर मुर्दे को बुलाने का काम अल्लाह का है तो मुर्दे को सुनाना भी अल्लाह का ही काम है। वरना मुर्दा अपने आप कैसे सुन सकता है?

ब – सुन तो खुद लेता है। हदीस शरीफ मैं है कि मुर्दा जूतियों की आवाज़ सुनता है। हदीस मैं यह तो नहीं है कि अल्लाह उसे सुनाता है। बल्कि बस इतना है कि मुर्दा सुन लेता है।

अ – जिस हदीस में मुर्दे के बोलने का जिक्र है उसमें भी यह नहीं है कि अल्लाह बुलाता है। उसमें तो यह है कि अगर नेक नहीं है तो कहता है''हाए मुझे कहां लिए जा रहे हो?

ब – इसे मुर्दो का बोलना नहीं कहते। यह तो उस का हाल है, कौल नहीं। उसकी इस हालत को अल्लाह के रसूल सल्ल. ने अपने अल्फ़ाज़ में बयान कर दिया है। वरना ऐसा नही है की जुबान से मुर्दा यह अल्फ़ाज़ कहता है और अगर उसके अपने बोल भी हों तो यहा उसकी बरज़खी जिन्दगी का मामला है। उसका इस दुनिया से क्या लेना–देना? इसको मुर्दो का बोलना नहीं कहते, हाँ उसके सुनने का मामला इस दुनियावी ज़िन्दगी से तअल्लुक रखता है क्यों की वह जिन्दों के जूतों की आहट सुनता है यानी इस दुनिया की आवाज सुनता है। इसलिए इसे मुर्दे का सुनना ही कहेंगे।

अ – जेसे वह इस दुनिया की आवाज सुनता है। ऐसे जब वह बोलता है या चीख व पुकार करता है तो सिवाए इंसान के दुनिया की हर चीज उसकी आवाज सुनती है।

ब – इन्सान उसकी आवाज क्यों नहीं सुनता?

अ – हदीस में अल्लाह के रसूल सल्ल. ने उसकी यह वजह बयान फरमाई है कि अगर लोग सुन लें तो वह बेहोश हो जायें और मुर्दे को कब्र में दफन नहीं करें।

ब – हमें मुर्दे के बोलने और शोर मचाने का पता तो नहीं लगता।

अ – आपको उसके सुनने का पता चल जाता है?

ब – पता तो सुनने का भी नहीं लगता।

अ – फिर आप कैसे कह सकते हैं कि मुर्दे सुनते हैं?

ब – हदीस यह बताती है।

अ – हदीस तो बोलने के बारे में भी बताती है, अब जब दोनों के बारे में ही हदीस से ही पता चलता है, तो क्या वजह है कि आप सुनने को मानते है ओर बोलने को नहीं मानते?

ब – तो फिर क्या दोनों बातों को मानना चाहिए?

अ – जब यह दोनों चीजें मुशाहेदे के खिलाफ हैं तो आप कैसे मान सकते हैं?

ब – आपने ही तो बोलना साबित किया है और अब आप ही दोनों का इंकार कर रहें है।

अ – अल्लाह के बन्दे मैंने तो इल्ज़ामन यह बात कही थी। वरना कौन कह सकता है कि मुर्दे सुनते हैं या बोलते हैं? आपने पूछा था मुर्दे सुनते हैं या नहीं, उस पर मैंने कहा कि बात कर के देखलें, आपने कहा वह तो बोल नहीं सकते, तब मैंने कहा कि वह सुन नहीं सकते, आपने कहां कि सुनना तो हदीस से साबित है, अब अगर आप कुरआन व हदीस की रू से उनका सुनना मानते हैं तो उनका बोलना भी मानें वरना दोनों का इंकार करें।

ब – हदीस में आ गया है तो इंकार कैसे कर सकते हैं?

अ – हदीस में यह तो नहीं कि मुर्दे बोलते या सुनते हैं, हदीस में तो खास–खास मौकों का जिक्र है, जिसका मतलब यह है कि अल्लाह किसी वक्त मुर्दे में सुनने या बोलने की ताकत पैदा कर देता है। कोई मुर्दा अपने आप ऐसा नहीं कर सकता, आप मुर्दे की हकीकत को देखिये क्या वह बोल या सुन सकता है?

ब – मुर्दे की हकीकत क्या है?

अ – हकीकत यह है कि जब मुर्दे की जान ही निकल गई, सांस रुक गई, नब्ज़ बंद हो गई, सारी ताकते खत्म हो गई और एहसास तक जाता रहा तो अब वह कैसे सुन सकता है? मुर्दा वह तो नहीं होता जिस में सुनने की ताकत हो और बोलने की नहीं, मुर्दा होता ही वही है जो कुछ भी न कर सके। अल्लाह तआला ने इस आयत में मुर्दे ही का तो नक्शा खींचा है, क्या अब उनके ऐसे कदम हैं जिनसे वह चल फिर सकें, ऐसे हाथ हैं जिनसे वोह पकड़ सके, ऐसी आँखें हैं जिनसे वोंह देख सकें, या ऐसे कान हैं जिनसे वोह सुन सकें (आराफ–आयत–195) मतलब यह कि मरने के बाद कोई इंसान शरीर के यह अंग रखते हुए भी कुछ कर नहीं सकता,क्योंकि जिस्म (शरीर) में जान नहीं होती और अगर यह अंग भी न रहें (इन्हें) आग या मिट्टी खा जाये तो फिर तो सुनने या बोलने का सवाल ही पैदा नहीं होता, क्योंकि फिर सुनेगा कैसे? और बोलेगा भी किस चीज़ से? लेकिन अल्लाह ऐसी हालत में भी सुना सकता है लेकिन मुर्दे के खुद

से बोलने या सुनने का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि न कान ही रहे ना ज़बान, इसी लिए अल्लाह ने फरमाया ऐ नबी (सल्ल.) ना तुम मुर्दों को सुना सकते हो और न बहरों को जबकि वोह मुंह मोड़ कर पीछे जा रहें हैं (रूम–आयत–52)। बहरे के कान तो होते हैं लेकिन वोह सुनने की ताकत नहीं रखता, जब वह सुन नहीं सकता तो मुर्दा क्या सुनेगा?जिस में न सुनने की ताकत रही न सुनने वाला अंग यानी कान, मगर अल्लाह इस हालत में भी उसके ज़र्रात को सुना सकता है अल्लाह के सिवा किसी और की ताक़त नहीं कि वह ऐसा कर सके, अल्लाह ने क्या खूब फरमाया कि "अल्लाह तो जिसे चाहे सुना दे (कान हो या ना हो) लेकिन ऐ पैगम्बर सल्ल. आप उनको नहीं सुना सकते, जो कब्रों में हैं यानी मुर्दे हैं। (फातिर–आयत–22) अब इस आयत को जान समझ लेने के बाद भी कोई कह सकता है कि मुर्दे सुनते हैं?

ब – मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि जब यह मसअला इतना साफ और खुला है तो अहले सुन्नत की इतनी बड़ी तादाद इसकी मुखालिफ क्यों है?

अ – ज्यादा तादाद और कम तादाद से हक को नहीं जांचा करते, हक तो दलील और अक्ल से जांचा जाता है।

ब – क्या इतनी बड़ी अक्सरियत को आप गलत कहेंगे?

अ – ईसा अलेहिस्सलाम को अल्लाह का बेटा कहने वालों की तादाद आपकी अक्सरियत से भी ज्यादा है। आप भी इतनी बड़ी तादाद को गलती पर कहते हैं, मेरे भाई अल्लाह के हक़ पसंद बंदें हक के मुकाबले में तादाद को नहीं देखा करते।

ब – आप तो सिर्फ आटे में नमक के बराबर हैं आप हक पर और हम जो कि 95 फीसद (प्रतिशत) हैं गलती पर। आपने भी क्या खूब कही।

अ – आप ही बताईये की क़ौमों पर अज़ाब ज्यादा तादाद के बिगाड़ से आता है या कम लोगों के बिगाड़ पर?

ब – अक्सरियत के बिगाड़ पर।

अ – अब मुसलमान उरूज (ऊंचाई) पर हैं या ज़वाल (पस्ती)

में? लगातार अज़ाब (सज़ा) की हालत है या नहीं?

ब – आज मुसलमान है तो सारी दुनिया में ज़लील (बेइज्जत)

अ – तो फिर यह ज़िल्लत आपकी वजह से है जो अक्सरियत में हैं या हमारी वजह से जो आटे में नमक के बराबर हैं?

ब – जिम्मेदारी तो अक्सरियत पर ही आती है।

अ – तभी तो मेंने कहा कि आप अक्सरियत को न देखें अगर अक्सरियत के अकाइद (अकीदे) सही होते तो मुसलमानों की यह हालत नहीं होती, आप ही गौर करें कि यह कैसे हो सकता है कि अक्सरियत के अकाइद व आमाल सही हो और फिर मुसलमानों की यह बुरी हालत हो, मुसलमानों की यह पस्ती व बदहाली इस बात की दलील है कि उनकी अक्सरियत अल्लाह की खींची राह से भटकी हुई है, अकीदे भी खराब और आमाल भी बरबाद। सच फरमाया अल्लाह तआला ने "शैतान ने इंसानों पर अपने ख्याल को सच्चा साबित कर दिया। सिवाय थौड़े से ईमान वालों के बाकी सब उसके पीछे हो लिये।" (सबा–आयत–20)

ब – शैतान का क्या ख्याल था जिसको उसने सच्चा साबित कर दिया?

अ – उसने कहा था यकीनन में सबको गुमराह करूंगा मगर ऐ अल्लाह उनमें तेरे मुखलिस बंदे ही मेरे वार से बच सकेंगे (सुवाद–आयत–82–83) और अक्सरियत गुमराह हो गई।

ब – उसने गुमराह कैसे किया?

अ – उनके सही अकीदों को बिगाड़कर और उन ही गलत अकाइद में यह अकीदा भी है कि मुर्दे सुनते हैं।

ब – इस अकीदे का गुमराही से क्या तअल्लुक?

अ – यह अकीदा शिर्क की बुनियाद है और शिर्क असल गुमराही है।

ब – यह अकीदा शिर्क की बुनियाद कैसे हो गया?

अ – अल्लाह के सिवा नबियों, वलियों, पीरों और फकीरों को

मुश्किल कुशा और हाजत रवा समझकर जो पुकारा जाता है तो यह इस अकीदे की वजह से कि वह सुनते हैं, अगर अकीदा यह हो कि वोह मर चुके हैं और जो मर जाते हैं वह सुनते नहीं हैं तो उनको कौन पुकारे और यह पुकारना ही असल शिर्क है।

ब – शिर्क किसे कहते हैं?

अ – इसका मतलब यह है कि शिर्क कभी ज़ात में कभी रबूबियत में, कभी उलूहियत में तो कभी असमा व सिफात में पाया जाता है।

शिर्क फ़िल्ज़ात यह है कि किसी को अल्लाह की ज़ात में शरीक ठहराना, इस तरह कि किसी को अल्लाह का जुज़ (हिस्सा) समझना या यह समझना कि अल्लाह किसी का जुज़ है। कोई अल्लाह की औलाद है या अल्लाह किसी की औलाद है यानि अल्लाह में और किसी और में थोड़ा या ज्यादा किसी रिश्ते नाते का बनाना जैसे ईसाईयों का ईसा अलैहिस्सलाम को अल्लाह का बेटा कहना शिर्क फ़िल्ज़ात है।

शिर्क फ़िल रबूबियत यह है कि अल्लाह के अलावा किसी को ख़ालिक (पैदा करने वाला) मालिक, रिज्क अता करने वाला, जिन्दा करने और मारने वाला और तसर्रुफ करने वाला समझा जाये या उसमें औरों को शरीक किया जाये। शिर्क फ़िल उलूहियत यह है कि इबादत के वह सारे काम या अफ़आल जो अल्लाह के लिए खास हैं जैसे दुआ, पुकार, मन्नत, नज़र, सज्दा, रुकूअ और कयाम वग़ैरह में अल्लाह के अलावा या उसके साथ किसी और के लिए भी किया जाय। अफसोस की बात यही हैं कि मुसलमानों की अक्सरियत आज इसी शिर्क में मुबतिला है। शिर्क फ़िल अस्मा व सिफ़ात यह है कि अल्लाह तआला जैसी खूबियां किसी और में साबित करना जैसे किसी मखलूक़ को आलिमुलगैब, हमेशा से जिन्दा व कायम समझना और मुखतारे कुल मानना वगैरह।

ब – आपने शिर्क को बहुत लम्बा–चौडा बना दिया है। हमने तो सुना है कि शिर्क बुतो की इबादत करने को कहते है?

अ – शिर्क तो अल्लाह का शरीक बनाने को कहते हैं। चाहे

नबी या वली को बनाया जाये या पीर–फकीरों को। जिन्दों को बनाया जाये या मुर्दों को, बुतों को बनाया जाये या मज़ारों को। जब बन्दा किसी को भी अल्लाह की खूबियों व उलूहियत या ज़ात व सिफात में शरीक समझता है तो मुश्रिक हो जाता है। शिर्क एक अकीदा है जो गलत है, बातिल है।

इबादत बुतों की हो या किसी और की इस अकीदे का नतीजा है कि आदमी मुश्रिक पहले बनता है, इबादत गैरूल्लाह की बाद में करता है जिस तरह पहले अल्लाह पर ईमान लाया जाता है बाद में उसके लिए नमाज़ पढ़ी जाती है।

ब – हम तो आज तक यह समझते रह हैं कि अल्लाह के सिवा किसी और को सज्दा करना ही शिर्क है।

अ – गैरूल्लाह की कैसी भी इबादत हो सब शिर्क है। इबादत सिर्फ उसी की की जाती है जो खालिक़ व राज़िक़ हो, मालिक व कादिर हो। हमेशा से (ज़िन्दा) हो, ज़मीन व आसमान का थामने वाला हो और ज़िन्दगी और मौत का मालिक हो, चूंकि अल्लाह के सिवा कोई भी ऐसी खूबियों वाला नहीं इसलिए इबादत का हक़दार भी उसके सिवा कोई नहीं। बन्दगी तो बन्दे के मालिक का ही हक़ है। नौकर किसी का हो और चाकरी किसी और की करें यह कैसे हो सकता है? शैतान चूंकि इंसान को गुमराह करना चाहता है इसलिए वह अल्लाह की मखलूक में अल्लाह की खूबियों का तसव्वुर दिलाता है ताकि शिर्क हो। वह कहता है अम्बिया और औलिया मरते नहीं बल्कि सिर्फ पर्दा करते हैं, वह मरने के बाद भी जिन्दा रहते हैं। वह सब कुछ सुनते हैं, देखते हैं। जब यह अकीदा लोगों के दिल व दिमाग में जम जाता है जो कि शिर्क है तो उनकी इबादत शुरू हो जाती है। किसी गायब को हाजतरवा समझ कर बुलाना या पुकारना सबसे बड़ी इबादत है। इबादत जिस्मानी हो या माली, क़ौली हो या फेअली किसी भी तरह की हो तभी की जाती है जब उनमें खुदाई खूबियां मान ली जाती हैं। अगर अकीदा यह हो कि वह मर गया है और अब कुछ नहीं कर सकता और न ही सुन सकता है तो शिर्क कभी नहीं हो सकता। अल्लाह ने मौत रखी ही इसलिए है कि तमाम मखलूक की बेबसी और आजिज़ी ज़ाहिर हो

जाये और शिर्क न हो। यह अकीदा की मुर्दे सुनते हैं मौत की तासीर को खत्म कर देता है फिर शिर्क पैदा होता है। अल्लाह अम्बिया और औलिया को मौत देकर शिर्क को मिटाता है और मुश्रिकीन इन्हें जिन्दा साबित करके कि वोह सुनते हैं देखते हैं, फायदा पहुचाते हैं, शिर्क को फैलाते हैं, अगर यह शैतानी हथकंडे न हों तो शिर्क का कारोबार चल ही नहीं सकता यही वजह है कि शिर्क करने वाले इस अकीदे का बचाव करते हैं। जबकि कुरआन इस अकीदे का जोरदार रद्द करता है। कुरआन मुर्दों के बोलने, चलने फिरने, खाने–पीने या किसी और बात को न करने या रद्द करने पर इतना जोर नहीं देता जितना सुनने की नफी पर जोर देता है। चूंकि दूसरी सारी हरकतें नज़र आती हैं इसलिए उनका झूट चल नहीं सकता। सुनने का झूट चल सकता है। चूंकि उसका पता नहीं लगता इसलिए अल्लाह सुनने का रद्द बड़ी शिद्दत से करता है, फरमाता है जिन्दा व मुर्दा बराबर नहीं हो सकते। अल्लाह जिसको चाहता है सुनाता है और आप ऐ नबी (सल्ल.) उन्हें नहीं सुना सकते जो कब्रों में हैं। (फातिर–आयत–22) अगर कोई समझे तो मौत है ही शिर्क की कमर तोड़ने के लिए। इसलिए अल्लाह ने हर नबी व वली पर मौत तारी की। ताकि लोग उन्हें अल्लाह का शरीक ना बनायें। वोह लोगों की आंखों के सामने मरे और दफन हुए। सोचिये उन्हे मोत आ गई तो वह किसी को फायदा या नुकसान कैसे पहंचा सकते हैं? वह तो अब सुनने बोलने दोनों से लाचार (आजिज़) हैं किसी को फायदा या नुकसान क्या पहुंचायेंगे? लिहाज़ा उनको सहारा समझना और मुश्किल कुशा जानना दोनों नादानी है। पुकारने और सहारा बनाने के लायक सिर्फ अल्लाह की जात है। जिसको मौत नहीं। इसलिए अल्लाह ने फरमाया "वह ज़िन्दा है, उसके अलावा कोई माबूदे बरहक़ (सच्चा पूजा योग्य) नहीं लिहाज़ा उसी के लिए सारी इबादतों को मिलावटों से पाक़ रखते हुए उसी को पुकारो।" यानी पुकारे जाने लायक सिर्फ अल्लाह की ज़ात है जो जिन्दा है और जिसे कभी मौत नहीं इसलिए भरौसा भी उसी ज़िन्दा पर करो जिसे मौत नहीं। जिसके लिए मौत हो उस पर क्या भरौसा करना। शिर्क करवाने के लिए शैतान की तो यह कौशिश होती है कि वह नबियों, वलियों को मुर्दा न खुद माने और न औरों को मानने दे, बल्कि उन्हें ज़िन्दा साबित करे। इसलिए शैतान कभी कहता है ओलिया मरते ही नहीं

बल्कि दुनिया से परदा कर लेते है तो कभी कहते है बुजुर्ग मरने के बाद भी अपनी कब्रों में दुनिया की तरह ज़िन्दा है। और सब कुछ करते हैं। तो कभी यह बताता है कि मुर्दे सारे ही सुनते हैं और जब सारे ही सुनते हैं तो अम्बिया व औलिया तो पहले सुनेंगे। जब सुनते हैं तो उन्हें पुकारने में क्या हरज। उन्हें तो दुनिया में भी अल्लाह का कुर्ब हासिल था। मरने के बाद तो यह और बढ़ जाता है। इसलिए उनकी ताकतों में बहुत इज़ाफा हो जाता है। पहले जो काम वह दुनियावी ज़िन्दगी में नहीं कर सकते थे अब कर सकते हैं। खुद भी बहुत कुछ कर सकते हैं और अल्लाह से सिफारिश के ज़रिये बहुत कुछ करवा सकते हैं। लिहाज़ा उन्हें पुकारना चाहिए। मुर्दों को सुनने के अकीदे की असल में जरूरत तो मुश्रिकों को अम्बिया और औलिया के लिए थी। ताकि उन्हें अल्लाह का शरीक बनाया जा सके। लेकिन चूंकि उनके लिए कोई खास दलील ना थी इसलिए उन आयात का सहारा लेते हैं जो आम मुर्दों के लिए थी। फिर असल मसला ही यह बना लिया कि मुर्दे सुनते हैं वरना आम मुर्दों के सुनने से मुश्रिकों को कोई दिल चस्पी नहीं। हाँ यह ज़रूर हुआ कि शैतान अपनी चालों में कामयाब रहा और उसने मुसलमानों की अक्सरियत को गुमराह कर दिया। हालांकि मुर्दे सुनते हैं, अकीदा बहुत आम है लेकिन जिन्हें अल्लाह ने समझ दी है वो जानते हैं कि ये बेबुनियाद अकीदा है। एक तरफ मुर्दा कहना फिर यह मानना की वह सुनता है अजीब बात है। भाई! वह मुर्दा ही क्या होगा जो सुने। सुनना जिन्दों का काम है मुर्दों का नहीं।

ब – यह अक़ीदा बेबुनियाद कैसे है?कब्रिस्तान में जाकर जब सलाम किया जाता है तो क्या मुर्दे नहीं सुनते?

अ – कहां सुनते हैं?

ब – अगर नहीं सुनते तो कब्रिस्तान में जाकर अस्सलामु अलैयकुम क्यों कहां जाता है?

अ – जब आप किसी को खत लिखते हैं तो उसमें सलाम क्यों लिखते हैं? क्या वह उस वक्त सुनता है?

ब – सुनता तो नहीं लेकिन खत में हम उससे मुखांतिब जो होते हैं। इसलिए उसको हाजिर समझ लेते हैं।

अ – ऐसे ही हम दुआ में मुर्दों को समझ लेते हैं। जबकि वोह सुनते नहीं।

ब – लेकिन खत तो उसको पहुंचता ही है।

अ – हमारा सलाम भी तो अल्लाह अपनी कुदरत से पहंचा ही देता है।

ब – क्या मुर्दे हमारे सलाम का जवाब नहीं देते हैं?

अ – सच और सही तो यही है कि वो सलाम का जवाब नहीं देते क्योंकि हमारा सलाम ऐसा नहीं होता जिसके जवाब की जरूरत हो बल्कि सलाम दुआ होता है जो दुआ के तौर पर उनको पहुच जाता है। लेकिन अगर मान लिया जाए कि वोह जवाब देते हैं तो इसकी वही सूरत होती है जो खत वाले सलाम और उसके जवाब की होती है। जिसमें सुनना–सुनाना मक़सूद नहीं होता। इसलिए कि वोह एक दूसरे से दूर होते हैं बल्कि सलाम पहुंचाना मक़सूद होता है। मुर्दे का सलाम व जवाब भी बातचीत की तरह नहीं होता कि मुर्दा ज़िन्दे का सलाम सुने और ज़िन्दा मुर्दे का, क्योंकि उनके बीच दूरी बहुत होती है। एक इस दुनिया में रहता है तो दूसरा अलग जहान में। सिवाए अल्लाह की कुदरत के बीच में कोई वास्ता नहीं होता। जब खुदाई डाक से ज़िन्दे का सलाम मुर्दे को पहुंचता है जैसे और दुआएं पहुंचती हैं। यह नहीं होता कि वह ज़िन्दा शख़्स का सलाम सुनकर व अलैकुम अस्सलाम कहता हो।

ब – कया मुर्दे सलाम खुद नहीं सुनते?

अ – अल्लाह के बन्दे! वो मुर्दे हैं, वो क्या सुनेंगे?

ब – हमने तो यही सुना है कि वो सलाम सुनते हैं और जवाब भी देते हैं।

अ – कभी आपने उनका जवाब सुना है?

ब – सुना तो कभी नहीं।

अ – फिर उस जवाब का क्या फायदा जो आपको सुनाई ना दें।

ब – हम उनका जवाब कैसे सुन सकते हैं?

अ – जैसे वो हमारा सलाम सुन लेते हैं। अजीब बात है कि वो मर कर भी सुन लें और हम ज़िन्दा रह कर भी न सुन सकें।

ब – मौत के बाद तो मुर्दे में बहुत ताकत आ जाती है इसलिए वह सुन सकता है और हम नहीं सुन सकते।

अ – जब उनमें बहुत ताकत आ जाती है तो फिर वो हमें क्यों नहीं सुना देते। या तो सलाम का जवाब नहीं देते हैं और अगर जवाब देते हैं तो फिर हमें सुनाएं। वह जवाब ही क्या हुआ जो हमें सुनाई न दे।

ब – उन्हें हमें सुनाने की क्या ज़रूरत है?

अ – जो ज़रूरत उन्हें सुनने की है। अगर मुर्दों को सलाम का जवाब सुनाने की नहीं तो हमारा सलाम सुनने की भी उन्हें जरूरत नहीं। हमारा सलाम तो दुआ है जो अल्लाह पहुंचा देता है। उसमें सुनने–सुनाने के तकल्लुफ की क्या ज़रूरत?

ब – मुर्दे का तो हक़ है कि हम उन्हें सलाम भेजें और दूसरे आमाल के ज़रिये मुर्दों को सवाब पहुंचायें।

अ – जब वो ज़िन्दा हैं तो उनको सवाब पहुंचाने की क्या ज़रूरत?ईसाले सवाब तो मुर्दो को किया जाता है न कि ज़िन्दों को। ज़िन्दा तो खुद अमल कर लेता है, हाँ मुर्दा अमल नहीं कर सकता।

आप सल्ल. का इर्शाद है" मरने के बाद आदमी के अमाल का सिलसिला ख़त्म हो जाता है। (मुस्लिम व दारमी–577) वह कोई अमल नहीं कर सकता। हत्ता कि सलाम का जवाब भी नहीं दे सकता। क्योंकि यह भी एक अमल है जिस पर सवाब मिलता है।

ब – आप कहते हैं कि मुर्दा कोई अमल नहीं कर सकता। लेकिन हदीस में आता है कि आप सल्ल0

ने मूसा अलैहि. को कब्र में नमाज़ पढ़ते देखा है।

अ – हदीस में तो यह भी आता है कि आप सल्ल. ने मूसा अलैहि. को 'लब्बैक–लब्बैक' पुकारते हुए टीले से उतरते हुए हज को जाते देखा है। इसी तरह यूनुस अलैहि. को भी सुर्ख ऊंटनी पर 'लब्बैक–लब्बैक पुकारते हुए देखा है।

ब – जब मूसा अलैहि0 को कब्र में नमाज़ पढ़ते हुऐ देखा तो मुर्दा इन्सानों का अमल करना साबित हो गया।

अ – जब तलबिया 'पुकारते' हुए हज को जाते देखा तो क्या हज करना साबित नहीं हुआ?

ब – आप सल्ल. ने देखा है तो हज करना भी साबित हो गया।

अ – अगर वह हज भी करते हे तो हज करते हुए लोंगों को नज़र क्यों नहीं आते?

ब – जब वह इस दुनिया से चले गये हैं तो अब नज़र कैसे आ सकते हैं?

अ – यही तो हम कहते हैं कि जब वह इस जहान से चले गये और आलमे बरज़ख में पहुंच चुके तो अब वह हज कैसे कर सकते हैं? हज तो ज़िन्दों पर है जो इस दुनिया में रहते हैं, न कि मुर्दो पर जो बरज़खी ज़िन्दगी गुजार रहे हैं।

ब – जब नबी सल्ल. ने उन्हें हज करते हुए देखा है तो वह हज करते हैं।

अ – अगर वह हज करते हैं तो सहाबा किराम रजि0 जो आप सल्ल0 के साथ थे, उनको वह नज़र क्यों नहीं आये?

ब – मुमकिन है उस वक्त सहाबा रजि. साथ न हों।

अ – हज भी कभी अकेले होता है? हज तो ज़िल्लिहज्जा की नौंवी तारीख को दिन में होता है और सब जमा होते हैं। इसके अलावा यह कि मुस्लिम शरीफ की हदीस में है कि यह कौनसी पहाड़ी है? सहाबा रज़ि ने बताया कि फिर आप सल्ल. ने फरमाया--गोया कि मैं मूसा अलैहि0 को तलबिया पुकारते हुए टीले से उतरते हुए देख रहा हूं। इसी तरह सुर्ख ऊंटनी पर युनूस अलैहि.को तलबिया कहते हुए देखा। जब आप सल्ल. ही ने देखा और सहाबा न देख सके तो इसका मतलब यह है कि यह आप सल्ल. का मोजज़ा था। अल्लाह ने रसूल सल्ल. को उन नबियों की दुनियावी ज़िन्दगी की एक झलक दिखा दी, ऐसा नहीं है कि मूसा अलैहि0 हक़ीकत में उस वक़्त क़ब्र में नमाज़ पढ़ रहे थे या लब्बैक–लब्बैक पुकारते

हज को जा रहे थे। इसी लिए आप सल्ल0 ने सहाबा रज़ि से कहा–गोया कि मैं देख रहा हूँ।

"कअन्नी अनजुरू" यानि वाकिअतन वह उस वक़्त नमाज़ नहीं पढ़ रहे थे बल्कि वह मिसाली सूरत थी।

ब – जब आपने देखा तो यह ज़रूर हक़ीकत होगी।

अ – हक़ीकत तो थी। लेकिन हक़ीकत दुनियावी ज़िन्दगी की थी जो अल्लाह ने उस वक्त दिखाई।

ब – आप सल्ल0 ने जब मूसा अलैहि. ही को क़ब्र में नमाज़ पढ़ते देखा तो वह मूसा अलैहि. ही होंगें।

अ – थे तो वह मूसा अलैहि0 ही, लेकिन वह मन्जर (दृश्य) उनकी दुनियावी ज़िन्दगी का था। वह उस वक़्त खुद मौजुद न थे। जैसे बिलाल रजि. को आप सल्ल. ने मेअराज की रात जूतों समेत (सहित) जन्नत में चलते–फिरते देखा। हालंकि वह उस वक़्त इस दुनिया में ज़िन्दा मौजुद थे। अभी उन्हें मौत भी नहीं आई थी। जैसे अल्लाह ने बिबाल रजि. का आलमे आखिरत का हाल आप सल्ल. को दिखा दिया, वैसे ही मूसा अलैहि. की दुनियावी ज़िन्दगी की एक झलक आप सल्ल. को दिखा दी। ऐसे वाकिआत से यह दलील पकड़ना कि मुर्दे ज़िन्दा हैं और अमल करते हैं, ठीक नहीं क्यों कि यह बरज़गी ज़िन्दगी के मामलात हैं। मुर्दे–मुर्दे हैं, न सुनते हैं, न बोलते हैं, न नमाज़ पढ़ते हैं, न हज करते हैं। अल्लाह जिस हालत में चाहे उनको दिखा दे या जो चाहे करवा दे। लेकिन जो करेंगे वह उनका अपना अमल नहीं बल्कि अल्लाह का फैसला होगा।

जैसे– अगर कोई किसी को इत्तेफ़ाक से कहीं मिल जाए तो यह नहीं कहेंगे कि वह वहां रहता है। अगर किसी को रास्ते में कोई नोट (रूपया) पड़ा मिल जाए तो यह नहीं कहेंगे कि फ़लाँ जगह रूपये मिलते हैं। यह तो इत्तेफाक है आम बात नहीं। आप जो कहते हैं कि मुर्दे सलाम सुनते हैं और जवाब देते हैं, फिर उससे यह दलील पकड़ते हैं कि सारे ही मुर्दे सुनते हैं, तो यह आप बताएं कि अगर उन से कुछ और पूछा या कहा जाए तो क्या वह सुनेंगे और जवाब देंगे?

ब – मैं यह तो नहीं कह सकता कि मुर्दे सुनते हैं और जवाब देते हैं।

अ – फिर आप यह कैसे कह सकते हैं कि मुर्दे सुनते हैं। अगर मुर्दे सलाम सुनते और जवाब देते हों तो सब कुछ सुनें और जवाब दें। यह तो नहीं की वह सिर्फ़ सलाम सुनें और सलाम का ही जवाब दें। अगर वो अपनी ताकत से सलाम सुनते और जवाब देते हों तो वो सब कुछ सुनें और जवाब दें।

लेकिन अगर वो सिर्फ सलाम ही सुन सकते हों और सिर्फ उसी का जवाब दे सकते हों तो फिर ज़ाहिर है कि वो ज़िन्दा नहीं बल्कि यह अल्लाह का फेअल है और अल्लाह जिसे चाहे सुना सकता है।

ब – मुर्दा जूतियों की आहट तो सुनता है। जब उसे क़ब्र में बन्द करके लौटते हैं या वह भी नहीं सुनता।

अ – वह तो सुनता है।

ब – फिर मुर्दों का सुनना तो साबित हो गया।

अ – मुर्दों का सुनना साबित नहीं हुआ बल्कि "इन्नल्लाह युसमेऊ मंय्याशाउ" अल्लाह जिसे चाहता है, सुना देता है"की रोशनी में अल्लाह का सुना देना साबित हुआ। इससे यह कहां साबित हुआ कि मुर्दे सुनते हैं बल्कि इससे तो यह साबित हुआ कि मुर्दा नहीं सुनता। अगर मुर्दा सुनता होता तो हदीस में यह जिक्र नहीं होता कि मुर्दे को दफन करके लौटते हैं तो वह उन लौटकर जाने वालों की जूतियों की आवाज़ सुनता है। बल्कि आम बात होती कि इन्सान मरने के बाद भी हर आवाज़ हर वक्त सुनता है। उसमें दफन करके जाने वालों की जूतियों की आवाज़ भी आ जाती और आने वालों की भी और आम बातें भी।क्योंकि आम से खास साबित हो जाता है और जब हदीस में आम जिक्र नहीं बल्कि खास जिक्र है कि मुर्दा जाने वालों की सिर्फ जूतों की आवाज़ सुनता है। उनकी और बातें नहीं सुनता।

ब – जब सुनता है तो सब कुछ ही सुनता होगा।

अ – जो हदीस आपने पेश की है उसमें तो सिर्फ जाने वालों की

जूतियों का जिक्र है। अगर मुर्दा सब कुछ ही सुनता होता तो फिर उसे खास करने का क्या फायदा?

ब – यह खास मौके की बात नहीं बल्कि हदीस का मतलब यह है कि मुर्दा जूतियों की आहट तक सुनता है। इससे सबित हो गया कि वह सब कुछ और हर वक़्त सुनता है।

अ – जूतियों की आहट तो आने वालों और जाने वालों दोनों की बराबर है। तो फिर जाने वालों को खास करने का क्या फायदा?

ब – इस फायदे का तो मुझे पता नहीं लेकिन यह जरूर साबित हो गया कि वह सुनता है।

अ – हदीस का मकसद यह बताना नहीं कि मुर्दे सुनते है। बल्कि यह बताना है कि जब लोग मय्यत को दफन करके लौटते हैं तो उसे एहसास दिलाया जाता है कि देख जिनकी वजह से तू मारा–मारा फिरता था, हलाल–हराम, जाइज़–नाजाइज़ की भी कोई तमीज़ नहीं करता था, वही अब तुझे अकेला छोड़ कर जा रहे हैं। कोई तेरा साथ नहीं दे सकता। इसलिए छोड़कर जाने वालों की जूतियों की आहट सुनाई जाती है। न आने वालों की आहट और न जाने वालों की बातें। मुर्दो को कुछ सुनाई नहीं देता। क्योंकि अकेले रह जाने और छोड़ जाने का एहसास इसी से हो सकता है।

ब – हदीस का मक़सूद कुछ भी हो, सुनना तो साबित हो गया। किसी वक्त सुनने से हर वक्त सुनने का इन्कार तो नहीं होता।

अ – इससे हर वक्त सुनना भी तो साबित नहीं होता।

ब – जब एक दफा सुनना साबित हो गया तो, साबित हुआ कि मुर्दे सुनते हैं। आप जब अब सुनते हैं तो मरने के बाद भी सुन सकेंगे। यह तो नहीं कह सकते कि फिर आप सुनेंगे। जो एक वक्त सुन सकता है, वह हर वक्त सुन सकता है।

अ – अरे भाई! मैं तो ज़िन्दा हूँ और सुनना मेरा अमल है। इसलिए मैं तो हर वक्त सुन सकता हूं लेकिन बात तो मुर्दे की हो रही है। आप मुर्दे को ज़िन्दा पर कयास कर सकते हैं? भय्या! सोते और जागतें में

बड़ा फर्क है। इर्शादे बारी तआला है "ज़िन्दा और मुर्दा बराबर नहीं।" (फ़ातिर–आयत–22) (उन में ज़मीन व आसमान का फर्क है) अलबत्ता अल्लाह जिसे चाहे सुना दे।(वह मुर्दे को भी सुना सकता है।) लेकिन ऐ नबी! तू मुर्दे को नहीं सुना सकता। (तू सिर्फ ज़िन्दा को सुना सकता है) साबित यह हुआ कि ज़िन्दा तो खुद सुनता है लेकिन मुर्दा खुद से नहीं सुन सकता। मुर्दे को तो जब सुनाए अल्लाह ही सुनाए।

ब – जब अल्लाह सुनाता है तब तो सुनता है?

अ – हां फिर तो सुनता है।

ब – सुनना तो फिर भी साबित हुआ।

अ – अल्लाह अगर पत्थर को सुनाऐ तो वह नहीं सुनेगा?

ब – सुनेगा क्यों नहीं?ज़रूर सुनेगा।

अ – फिर तो पत्थर के लिए भी सुनना साबित हो गया। क्या आप कहेंगे कि पत्थर भी सुनते हैं?

ब – पत्थर और इन्सान में तो बड़ा फर्क है।

अ – हाँ! पत्थर और इन्सान में बड़ा फर्क है। लेकिन पत्थर और मुर्दे में देखने और सुनने के ऐतेबार से कोई फर्क नहीं। जैसे पत्थर में सुनने की ताकत नहीं। ऐसे ही मुर्दे में सुनने की सलाहियत नहीं। क्योंकि ज़िन्दों और मुर्दों में बड़ा फर्क है।

ब – जब मुर्दे में सुनने की सलाहियत नहीं तो फिर मुर्दा जूतियों की आहट कैसे सुन लेता है?

अ – वह तो अल्लाह सुनाता है। इसे मुर्दे का सुनना नहीं कहते।

ब – सुनता तो मुर्दा ही है। मुर्दे का सुनना क्यों नहीं कहते?

अ – भय्या! यह निस्बत तो मिजाज़ी (मिसाल के तौर पर) है। हकीकत में यह फेअल मुर्दे का नहीं बल्कि अल्लाह का होता है चूंकि मुर्दा अल्लाह के इस फेअल का ज़रिया या बहाना होता है, इसलिए निस्बत मुर्दे की तरफ कर देते हैं। जैसे हम कहते हैं कि फलाँ स्टेशन आ गया।

हालांकि आने का काम गाड़ी करती है। मगर निस्बत स्टेशन की तरफ कर देते हैं। इसी तरह रेडियों, टेपरिकॉर्डर और ग्रामोफोन हैं। हम कहते हैं रेडियो बोलता है। जबकि बोलना उसका काम नहीं। मगर निस्बत हम उसकी तरफ कर देते हैं। क्योंकि बज़ाहिर वही बोलता नज़र आता है। कोई अमल किसी का उस वक्त कहलाता है जब वह उसको अपनी समझ, इरादे और ताकत से करे। जो अल्लाह ने मुस्तकिल तौर पर उसे दे रखी है। मुर्दा चूंकि मुर्दा है, उसमें एहसास और इरादा (मर्जी) नहीं होती, इसलिए उसके किसी फेअल को उसका अमल नहीं कहते।

मूसा अलैहि. का असा (लाठी) जब अल्लाह चाहता था सांप बन जाता था। मगर हम नहीं कह सकते कि लाठियां सांप बन जाती हैं। नबी सल्ल. मेअराज में आसमानों पर गये लेकिन हम नहीं कह सकते कि इन्सान आसमानों पर जाते हैं। लिहाजा यह नतीजा निकालना बिल्कुल गलत है कि जब मुर्दा जूतियों की आहट सुनता है तो वह सब कुछ सुनता होगा। जैसा कि हम सभी कुछ सुनते हैं। हम ज़िन्दा हैं और वह मुर्दा। ज़िन्दा और मुर्दा में यही फर्क है कि ज़िन्दा अपनी ताकत से सुनता है और मुर्दे में वह ताकत नहीं रहती। इसलिए वह नहीं सुन सकता। ज़िन्दा भी उस वक्त तक ही सुन सकता है जब तक उसमें वह ताकत रहती है। आप बताइये कि जब आदमी सो जाता है तो क्या फिर भी सुनता है?

ब – फिर तो वह नहीं सुनता।

अ – जब सोया हुआ आदमी नहीं सुन सकता तो मुर्दा कैसे सुनेगा?

ब – शुहदा तो सुनते होंगे, वह तो ज़िन्दा हैं।

अ – शहीद कहते किसे हैं?

ब – जो अल्लाह की राह में कत्ल हो जाए।

अ – क़त्ल होने के बाद शहीद बनता है या पहले?

ब – बनता तो कत्ल होने के बाद ही है।

अ – जान निकलने से पहले कोई शहीद बनता है?

ब – नहीं।

अ – फिर शहीद ज़िन्दा कैसे हुआ?

ब – सुना है शहीद तो मरते ही नहीं?

अ – अगर मरते नहीं तो शहीद कैसे हो जाते? शहीद तो वह हैं जो अल्लाह की राह में मर जाए यानी शहादत मिलती ही मरने के बाद है।

ब – क्या कुरआन में नहीं है कि शहीद ज़िन्दा हैं?

अ – कुरआन में कहां है कि शहीद ज़िन्दा है? कुरआन तो शोहदा (शहीदों) के लिए पहले मौत साबित करता है। फिर बरज़खी ज़िन्दगी की खबर देता है।

इर्शादे बारी तआला है "जो अल्लाह की राह में मारे जाते हैं, उनको मुर्दा मत समझो। वो अपने रब के पास ज़िन्दा हैं, रिज़्क खाते हैं।"(आले इमरान–आयत–169)

कुरआन शहीद को दुनिया के ऐतेबार से मुर्दा और अगले जहान में ज़िन्दा बताता है। कुरआन यह नहीं कहता है कि शहीद दुनिया में ज़िन्दा हैं, सुनते हैं, देखते हैं या कोई और काम करते हैं।

ब – अगले जहान में तो सारे ही ज़िन्दा हैं। फिर शहीदों की क्या खुसूसियत?

अ – क्या शहीदों की खुसूसियत (विशेषता) इसी में है कि वह दुनिया में वापस आ जाएं?

ब – आखिर यह विशेषता तो है कि वो मर कर भी ज़िन्दा हैं।

अ – कहां, दुनिया में या बरज़ख में?

ब – दोनों जगह! दुनिया में भी और बरज़ख में भी।

अ – दोंनों जगह कैसे ज़िन्दा हो सकते हैं? आप जानते हैं कि बरज़खी ज़िन्दगी कब शुरू होती है?

ब – जब आदमी मर जाता है।

अ – यानि दुनयवी ज़िन्दगी के खत्म होने पर।

ब – जी हां।

अ – जब बरज़ख़ी ज़िन्दगी दुनियावी ज़िन्दगी के ख़त्म होने पर शुरू होती है तो दोनों कैसे एक हो सकती हैं? क्या दिन रात एक हो सकते हैं? क्या जवानी और बुढापा एक साथ हो सकते हैं? जब एक चीज़ की शुरूआत दूसरी की इन्तेहा (आखिर) हो तो ऐसी चीज़े कभी जमा नहीं हो सकतीं। जैसे दिन और रात जमा नहीं हो सकते दिन खत्म होगा तो रात आयेगी। जैसे बचपन, जवानी, बुढापा एक नहीं हो सकते। इसी तरह यह नहीं हो सकता कि एक शख्स दुनियां में भी ज़िन्दा हो और बरज़ख में भी। अगर दुनिया में ज़िन्दा है तो बरज़ख में नहीं और अगर बरज़ख में ज़िन्दा है तो दुनिया में नहीं। क्योंकि दुनिया वाली ज़िन्दगी खत्म होने के बाद ही बरज़खी ज़िन्दगी शुरू होती है। इन्सानी ज़िन्दगी का सफर पैदाइश से शुरू होता है। पहले बचपन फिर जवानी फिर बुढ़ापा फिर मौत के दरवाज़े से बरज़ख, फिर आखिरत, फिर असली ठिकाना जन्नत या जहन्नम। यहां पहुंचकर यह सफर खत्म होता है। जब से यह सफर शुरू होता है। इन्सान आगे की तरफ ही बड़ता है। रफ्तार तेज़ या सुस्त हो सकती है। लेकिन पीछे नहीं हट सकता। यह तो हो सकता है कि बचपन में ही मौत आ जाये। जवानी और बुढ़ापे की नौबत ही न आये लेकिन यह नहीं हो सकता कि जवान फिर बच्चा बन जाऐ या बूढ़ा फिर जवान हो जाए। यह तो हो सकता है कि बरज़ख में ही आखिरत वाली लज़्ज़तें मिलने लगें जैसे कि शुहदा को मिलती हैं। लेकिन यह नहीं हो सकता कि कोई शहीद बरज़ख से दुनिया में आ जाए। क्योंकि यह दुनिया कैदखाना है और मौत उससे निकलने का दरवाज़ा। क्योंकि मौत ही से इन्सान इस कैद से आज़ाद हो सकता है। इसलिए मौत ही मोमिन (ईमान वाले) की तरक़्क़ी है। इसीलिए नबी, वली, खास, आम सभी पर मौत आती है और वह उस दरवाज़े से निकलकर जो दरजात अल्लाह ने उनके लिए तैयार किये हैं, उन्हें पाने के लिए आगे बढ़ते हैं। शहीदों और नबियों को तो छोड़िये कोई मोमिन भी नहीं चाहता कि फिर इसी दुनिया में वापस आ जाए और अपनी मन्ज़िले मक़सूद से दूर हो।

ब – सुना है शहीद तो इस दुनिया में वापस आने की चाहत रखते हैं।

अ – दुनिया में आने की चाहत नहीं करते बल्कि दोबारा शहीद होने की आरजू करते हैं।

ब – आखिर शहीद तो इस दुनिया में आने के बाद ही हो सकते हैं।

अ – तो फिर क्या अल्लाह उनको भेज देता है?

ब – आखिर भेजता ही होगा। अल्लाह उनकी बात तो रद्द नहीं करता होगा?

अ – तो फिर क्या आपने शहीद को दुनिया में आकर रहते और दोबारा शहीद होते देखा है?

ब – देखा तो नहीं।

अ – आपने देखा भी नहीं और कोई आता भी नहीं। अल्लाह उनकी इस ख्वाहिश को पूरा नहीं करता। इसलिए कि यह बात (अमल) अल्लाह की हिकमत के खिलाफ है, यह सिर्फ तमन्ना (आरजू) होती है। वरना मर कर फिर दुनियां में आना गिरावट है, तरक़्क़ी नहीं। तरक़्क़ी आगे जाने में है क्योंकि जन्नत आगे है और जन्नत का मिल जाना बड़ी कामयाबी है। इसलिए मोमिन आगे ही बढ़ता है, दुनिया में वापस नहीं आता।

ब – ईसा अलैहि० जिन मुर्दों को ज़िन्दा करते थे वो तो दुनिया में वापस आए।

अ – इसे वापस आना नहीं कहते। वापस आना तो वोह है जो अपनी मर्जी (ईच्छा) से हो और इस तरह कोई भी वापस नहीं आया। यह ईसा अलैहि० का मोजज़ा था।

ब – मर्जी से आया या अल्लाह लाया, दुनिया में तो आ गया, दुनियावी ज़िन्दगी मिल गई।

अ – इसे ज़िन्दगी मिलना नहीं कहते। दुनियावी ज़िन्दगी तो उस वक्त तक है जब तक मौत न आए। जब मौत आ गई तो दुनिया वाली ज़िन्दगी खत्म हो गई। फिर अगर मोजज़ाना (चमत्कारिक) तौर पर अल्लाह किसी को ज़िन्दा कर दे या जिसकी उम्र अभी बाकी हो उसे

मोजज़ाना तौर पर मार दे और जितनी देर चाहे मुर्दा रखे और फिर ज़िन्दगी देकर छोड़ दे। ताकि वह अपनी बकिया उम्र पूरी करे तो यह दुनियावी ज़िन्दगी कहलायेगी जब तक उसकी उम्र पूरी न हो जाए। हज़रत ईसा अलैहि. का मुर्दों को अल्लाह के हुक्म से ज़िन्दा करना ऐसा ही था और ऐसा ही उज़ैर अलैहि. के साथ भी हुआ और बनी इस्राईल में दूसरे लोगों के साथ भी। इस बात को यूं समझें कि कुरआन की कुछ सूरतें मक्की हैं और कुछ मदनी। मक्की वोह कहलाती हैं, जो हिजरत से पहले नाज़िल हुईं और मदनी वह जो हिजरत के बाद। अगर हिजरत के बाद कोई सूरत या आयत मक्का में नाज़िल हुई तो उसे भी मदनी ही कहते हैं क्योंकि यह उस ज़माने से तअल्लुक रखती है जो हिजरत के बाद का है। यही हिसाब दुनियावी और बरज़खी ज़िन्दगी का है। मौत से पहले की ज़िन्दगी दुनियावी है और मौत के बाद की बरज़खी। चाहे वक्ती तौर पर अल्लाह दुनियावी ज़िन्दगी में कुछ अरसा (समय) मुर्दा रखे या बरज़खी ज़िन्दगी में कुछ अरसा ज़िन्दा रखें। इसके अलावा यह कि ईसा अलैहि0 जिन मुर्दों को ज़िन्दा करते थे, ऐसा न था कि वो ज़िन्दा ही रहते थे। वह तो मोजज़ा होता था। जितनी देर अल्लाह चाहता उन्हें ज़िन्दा रखता। फिर उन्हें मुर्दा कर दिया जाता बिना मौत की तक़लीफ के। मोजज़ात में यही होता है कि उनको दिखाने के बाद चीजों को असली हालत में लौटा दिया जाता है। जैसा कि मूसा अलैहि. का असा सांप बनने के बाद फिर असा बन जाता था (ताहा–आयत–21) ईसा अलैहि. का मुर्दों को ज़िन्दा करना उनका मोजज़ा था। जो अल्लाह का फेअल (काम) था। मोजज़ा नबी की नबुव्वत और अल्लाह की कुदरत की दलील होता है। अल्लाह ने ईसा अलैहि. के हाथ पर मुर्दों को ज़िन्दा करके दिखाया कि मैं जो अदम (कुछ नहीं) से वजूद में ला सकता हूं तो में मुर्दो को भी ज़िन्दा कर सकता हूं। मेरे लिए एक जहान से दूसरे जहांन में लाना ले जाना कोई मुश्किल नही लेकिन मोजज़ा एक खास बात होती है, उस पर कयास नहीं किया जा सकता। जैसा कि अल्लाह ने ईसा अलैहि. को बगैर बा पके पैदा किया मगर इससे यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता है कि बच्चे बिना बाप के भी पैदा हो सकते हैं। इसी तरह यह भी नहीं कह सकते कि मुर्दे ज़िन्दा भी हो जाते हैं। क्योंकि ईसा अलैहि. सलाम के वक्त में कई मुर्दे ज़िन्दा

हुऐ। या मुर्दे बात भी कर लेते हैं क्योंकि नबी सल्ल0 ने बदर में जो मुश्रिक कत्ल हुए थे उनसे बात की थी। या मुर्दा जब उसे कब्र में रखकर जाते हैं तो वह जूतों की आहट सुनता है। यह सब अल्लाह के काम हैं वह जो चाहे करदे, उसे सब जगह फिर नहीं किया जा सकता।

ब – अम्बिया भी नहीं सुनते क्या?

अ – अम्बिया कैसे सुन सकते है? क्या उन पर मौत नहीं आती?

ब – मौत तो आती है।

अ – जब मौत आती है तो वह कैसे सुन सकते हैं। मौत तो मौत है जिस पर भी आती है उसे मुर्दा कर देती है। मरने वाला कोई भी क्यों न हो। वह न सुन सकता है न बोल सकता है। न देख सकता है और न कुछ कर सकता है।

ब – नबियों और आम इन्सानों में तो बहुत फर्क है।

अ – फर्क तो बहुत है लेकिन मौत तो एक है। मौत में तो कोई फर्क नहीं। अल्लाह तआला का साफ फरमान है। ऐ नबी आप मरने वाले हैं और इन लोगों को भी मौत आनी है। (जुमर–आयत–30)

ब – नबी की ज़ात (हस्ती) तो बहुत बड़ी होती है।

अ – कितनी भी बड़ी हो मौत से छूट नहीं, मौत तो ज़रूरी है। मौत तो सिर्फ अल्लाह के लिए नहीं बाकी सब के लिए है।

ब – लेकिन अम्बियां और गैर अम्बियां में फर्क होना चाहिए।

अ – मौत में क्या फर्क हो सकता है? यह तो हो सकता है कि उनकी जान औरों के मुकाबले आसानी से निकले लेकिन यह नहीं हो सकता कि उन पर मौत न आये या उनकी जान पूरी न निकले। बल्कि आधी निकले। मौत तो पूरी जान निकलने को कहते हैं। जिस पर मौत आती है वह मर जाता है। मतलब यह कि उसकी रूह जिस्म से अलग हो जाती है। एहसासात सब खत्म हो जाते हैं। मरने वाला चाहे कोई भी हो, इस दुनिया को छोड़कर अगली दुनिया बरज़ख में पहुंच जाता है।

ब – नबियों और आम इन्सानों में क्या फर्क हुआ?

अ – आप यह बताईये कि नबी जब दुनिया में रहते हैं तो उनकी ज़िन्दगी और आम इन्सानों की ज़िन्दगी में क्या फर्क होता है?

ब – अम्बियां पर फरिश्ते उतरते हैं और अल्लाह की तरफ से वह्य आती हैं।

अ – यह फर्क तो नबुव्वत का है। ज़िन्दगी का तो कोई फर्क नहीं होता। नबी भी ज़िन्दा, खाते पीते और चलते फिरते हैं और आम आदमी भी ज़िन्दा, खाते पीते और चलते फिरते हैं। यह रूह भी जिस्म के साथ और वह रूह भी जिस्म के साथ। फर्क तो नबुव्वत का होता है। नबियों को नबुव्वत की वजह से जो कुर्ब और दर्जा हासिल होता है वह आम लोगों को नहीं होता। यही हाल मरने के बाद का है। बरज़खी ज़िन्दगी सब की एक जैसी होती है। फर्क सिर्फ दर्जे का होता है। जैसे दुनिया में नबियों का दर्जा ज्यादा और उसकी वजह से अल्लाह का कुर्ब ज्यादा उसी तरह बरज़खी ज़िन्दगी में भी उनका दर्जा ज्यादा और अल्लाह से कुरबत भी ज्यादा। जिन्दगी में कोई फर्क नहीं। वह सब की एक जेसी होती है।

ब – अम्बिया दुनिया में रहते हुए आसमानी दुनिया की रूहानी और जिस्मानी सैर नहीं करते?

अ – क्यों नहीं, अल्लाह जब चाहता है उन्हें सैर करवा देता है। नबी सल्ल. को भी मेअराज हुई।

ब – जिस तरह वह दुनिया में रहते हुए आलमे बाला की सैर कर लेते हैं उसी तरह वो बरज़ख में रहते हुए इस दुनिया की सेर करें तो क्या मुश्किल है?

अ – दुनिया में रहते हुए आलमेबाला की सैर तो तरक्की है मगर आलमे बरजख से इस दुनिया में आना गिरावट है। इसलिए मेअराज तो हो सकता है, तनज्जुल नहीं हो सकता। इसके अलावा दुनिया कैदखाना है। यहां आना सज़ा है। आदम अलैहि0 को बतौर सज़ा ही यहां भेजा गया था। आगे जाना या आलमे बाला की सैर ऊरूज (ऊंचाई) है। लिहाज़ा अम्बिया बरज़ख में होते हुए आखिरत की नेअमतों से फायदा तो उठा सकते हैं और जन्नत में अपने ऊंचे (आला) मकाम का नज़ारा भी कर सकते हैं। मगर

वापस दुनिया में नहीं आ सकते।

ब – हमने सुना है कि अम्बिया को कब्रों में भी दुनियावी ज़िन्दगी हासिल होती है।

अ – दुनियावी ज़िन्दगी मौत के बाद कैसे मिल सकती है। मौत के बाद तो बरज़खी ज़िन्दगी है न कि दुनियावी।

ब – मतलब यह है कि वो कब्रों में ऐसे ही ज़िन्दा हैं जैसे कि दुनिया में थे।

अ – दुनिया की तरह कब्र में वोह कैसे ज़िन्दा रह सकते हैं। दुनिया में तो वोह खाते–पीते थे। दुनियावी ज़रूरतें भी उनके साथ थीं। क्या वोह कब्र में भी यह सब कुछ करते हैं?

ब – खाने तो उनको जन्नत के मिलते है। जिनके खाने से बोल व बराज़ (पैशाब व पखाने) का सवाल ही पैदा नहीं होता।

अ – यही तो हम कहते हैं कि मरने के बाद नबियों की ज़िन्दगी बरज़खी होती है, दुनियावी नहीं। वोह बरज़ख में आखिरत की नेअमतों से लुत्फ उठाते हैं, न कि दुनिया की। आप ही सोचें कि दुनियवी ज़िन्दगी कब्र में कैसे हो सकती है? आप किसी ज़िन्दा शख्स को कब्र में दफन करके देखलें। क्या वह जिन्दा रह सकता है?

ब – सच यही है कि दुनिया मोमिन के लिए एक कैद खाना है और मौत उसे रिहाई दिलाने वाली है। मौत के बाद कब्र में पहुंचकर फिर दुनियावी जिन्दगी देना यह दुगनी सज़ा होगी। जो नेक व परहेज़गार लोगों के लिए और खासकर नबियों के लिए नहीं हो सकती। जब एक मोमिन मरने के बाद कहता है "कद्दिमूनी–कद्दिमूनी" यानि मुझे जल्दी ले चलो, मुझे जल्दी ले चलो। तो एक नबी को कब्र में दुनिया की ज़िन्दगी कैसे पसन्द हो सकती है। जब एक शहीद मरने के बाद अपने रब के पास जा कर रिज़्क खाता है और उसकी 'वलाकिल्ला तशउरून' (हम जिसका शऊर नहीं रखते) वाली बरज़खी जिन्दगी होती है तो एक नबी की जिन्दगी दुनिया की कैसे हो सकती है?

ब – क्या अल्लाह उनको कब्र में ज़िन्दा नहीं रख सकता?

अ – अल्लाह तो सब कुछ कर सकता है, मगर वह बेमतलब का काम कभी नहीं करता। वह हकीम है, उसके सब काम हिकमत के होते हैं। अगर अल्लाह नबियों को ज़िन्दा ही रखना चाहता तो उन्हें कब्रों में क्यो रखता?बाहर दुनिया में ज़िन्दा क्यों नहीं रखता ताकि कोई फायदा तो हो। आखिर नबी को कब्र में जिन्दा रखने से फायदा क्या है?जिसकी वजह से उन्हें कब्र में जिन्दा रखा जाये। नबी दुनिया में अल्लाह का दीन पहुंचाने आते हैं। जब तक वोह जिन्दा रहते हैं तबलीग करते हैं कब्र में जिन्दा भी हों और कर भी कुछ न कर सकें, ऐसी ज़िन्दगी का उनको या उनकी उम्मतों को क्या फायदा?

ब – नबी सल्ल. के बारे में तो सब का यह अकीदा है कि वह कब्र में दुनिया की तरह से ज़िन्दा हैं।

अ – दुनियावी ज़िन्दगी कोई कमाल है जो नबी सल्ल. कब्र में भी दुनिया की तरह ज़िन्दा हों। मरने के बाद तो बरज़खी ज़िन्दगी ही तरक्की है और यह आप सल्ल. को हासिल है। आप का यह कहना भी गलत है कि सबका यही अकीदा है। सहाबा रजि. और आईम्मा रह. में से कोई भी इस अकीदे का कायल न था कि आप सल्ल. अपनी कब्र में ज़िन्दा हैं। अगर सहाबा रजि. को इस का इल्म हो जाता तो कभी नबी सल्ल. को कब्र में न छोड़ते बल्कि फौरन निकाल लेते। यह तो आप लोग हैं कि आप सल्ल. को कब्र में दुनिया की तरह ज़िन्दा भी मानते हैं और कब्र से नितालते भी नहीं। आप जो कहते हैं कि आप सल्ल. ज़िन्दा हैं तो क्या उन्हें ज़िन्दा (को) ही दफन कर दिया गया था?

ब – दफन तो मरने के बाद किया गया था।

अ – फिर वोह ज़िन्दा कब और कैसे हो गये?

ब – जब उनको कब्र शरीफ में उतार दिया गया तो वह ज़िन्दा हो गये।

अ – अगर उन्हें बाहर ही रखा जाता दफन न किया जाता तो क्या फिर भी वह ज़िन्दा हो जाते? या अगर अब निकाल लिया जाये तो बाहर आकर वह ज़िन्दा रहेंगे या फिर मुर्दा हो जायेंगे?

ब – इस बारे में क्या कह सकते हैं। यह तो अल्लाह ही बेहतर

जानता है।

अ – मौत से लेकर दफन होने तक तकरीबन 32 घण्टे आप सल्ल. का मुर्दा जिस्मे अतहर बाहर रहा इस अरसे में आप ज़िन्दा रहे या मुर्दा?

ब – मुर्दा ही रहे होंगे क्योंकि जब आप दफन किये गये थे तो मुर्दा ही थे।

अ – जब आप इस अरसे में मुर्दा ही रहे तो फिर कब्र में ज़िन्दा कैसे हो गये? आप सोचिये क्या ऐसी ज़िन्दगी को दुनियावी ज़िन्दगी कहेंगे कि बाहर हो तो मुर्दा और कब्र में आये तो ज़िन्दा। आप का यह कहना भी बिल्कुल गलत है कि आप सल्ल. कब्र में जाकर ज़िन्दा हो गये और अब भी ज़िन्दा हैं। इसलिए की वलीद बिन अब्दुल मलिक के ज़माने में बुखारी शरीफ की हदीस के मुताबिक "जब" हुजरे की दीवार गिर गई तो एक कदम (पैर) नंगा हो (खुल) गया। अक्सर का खयाल था कि यह पैर आप सल्ल. का है। लेकिन उरवह बिन जुबेर रह. ने कहा कि यह उमर रज़ि. का है। उस वक्त वह तीनों अज़ीम इन्सान उसी तरह (सौए) पड़े थे, जैसे दफन किये गए थे। उनमें दुनियावी ज़िन्दगी की कोई झलक नज़र नहीं आती थी। अगर उस वक्त भी उनमें दुनियावी ज़िन्दगी के कुछ आसार नज़र आते तो पहली सदी थी, वो लोग उन्हें ज़रूर बाहर निकाल लेते। पता चला कि खैर वाले शुरूआती ज़मानों में लोगों का यह अकीदा ना था कि आप सल्ल. कब्र में ज़िन्दा हैं। वह लोग तो नबी सल्ल. की बरज़खी ज़िन्दगी के ही कायल थे। आप लोग जो कहते हैं कि नबी सल्ल. कब्र में ज़िन्दा हैं तो आप को इतना वक्त गुज़रने के बाद इसका पता केसे लग गया?

ब – आप सल्ल. कि ही तो हदीस है कि नबी ज़िन्दा होते हैं और रिज़्क खाते हैं?

अ – अल्लाह के बन्दे इसका मतलब यह तो नहीं कि नबी कब्र में जाकर ज़िन्दा हो जाते हैं और ज़िन्दगी दुनीयावी होती है। हदीस का मतलब तो यह है कि वह अपने रब के पास ज़िन्दा हैं और रिज़्क खाते हैं ज़िन्दगी उनकी बरज़खी है जैसा कि कुरआन शहीदों के बारे में बताता है

कि वह ज़िन्दा हैं और उनके रब की तरफ से उन्हें रिज़्क भी दिया जाता है। (आले इमरान आयत 169) तो जब शहीद अपने रब के पास ज़िन्दा हैं और रिज़्क खाते हैं तो अमबिया जो शहीदों से अफज़ल हैं उनकी ज़िन्दगी दुनियावी कैसे हो सकती है? क्या दुनियावी ज़िन्दगी बरज़खी ज़िन्दगी से आअला व बहतर होती है? या अमबिया अलैहि. शहीदों से कमतर होते हैं कि शहीद तो मरने के बाद अल्लाह के पास बरज़खी ज़िन्दगी में हो और अल्लाह का रिज़्क खाए मगर अमबिया दुनियावी ज़िन्दगी में कैद़।

ब – अगर रसूल सल्ल0 कब्र में ज़िन्दा नहीं तो सलाम कैसे सुन लेते हैं?

अ – वह सलाम सुनते नहीं उन्हें सलाम फ़रिशतों के ज़रीये पहुंचाया जाता है।

ब – हदीस में तो आता है कि नबी सल्ल. ने फरमाया जो मेरी कब्र पर आकर सलाम पढ़ता है मैं उसका सलाम खुद सुनता हूँ।अगर आप कहते हैं कि वह सुनते नहीं हैं तो क्या आप इस हदीस को नहीं मानते?

अ – आप मानते हैं इस हदीस को।

ब – क्यों नहीं हम तो मानते हैं।

अ – इस हदीस में यह भी है कि आप सल्ल. क़ब्र पर का सलाम सुनते हैं, फिर आप अपने घरों और मस्जिदों ही में बैठे या खड़े रहकर "अस्सलातु वस्सलामु अलैक या रसूलुल्लाह" क्यों पुकारते हैं?

ब – आप भी तो 'तशहहुद' में अस्सलामु अलैक अय्यु हन्नबी" कहते हैं।

अ – हमारे नज़दीक तो वह किसी वक्त भी नहीं सुनते। न ही उन्हें सुनाने के लिए हम यह पढ़ते हैं। हम तो यह हिकायत के तौर पर पढ़ते हैं। जैसा की जब कुरआन की तिलावत के दौरान "या अय्युहल्लज़ीना आमनू" (ऐ ईमान वालो) भी आ जाता है। जिससे हमारी मुराद मोमिनों को बुलाना या सुनाना नहीं होता बल्कि सिर्फ़ कुरआन को पढ़ा जाता है। इसी तरह से तशह्हुद है, उसको पढ़ते हुए भी "अस्सलामु अलैक अय्युहन्नबी" आ जाता है। इसे पढ़ने से हमारा मक़सद आप सल्ल. को पुकार कर सलाम कहना नहीं होता बल्कि सिर्फ़ तशहहुद पढ़ना होता है। हिकायतन सलाम भी आ जाता है।

ब – अगर आप सलाम खिताब के तौर पर नहीं करते तो "अस्सलामु अलैक अय्युहन्नबी" क्यों कहते हैं?

अ – आप यह बताऐं कि आप स़ल्ल. और सहाबा किराम रजि. का यही तश्हुद था जो आप पढ़ते हैं या कोई ओर था?

ब – तशहहुद तो यही था।

अ – अगर उनका तशहहुद भी यही था और उसमें "अस्सलामु अलैक अय्युहन्नबी" खिताब के लिए है तो आप सल्ल. जब इसे पढ़ते थे तो नमाज़ में किससे ख़िताब करते थे और सहाबा किराम जब आप सल्ल. की मौजूदगी में इसे पढ़ते थे तो क्या रसूल सल्ल. उनको जवाब देते थे?

ब – जवाब तो नहीं देते थे।

अ – क्या सलाम का जवाब देना जरूरी नहीं?

ब – जरूरी तो है लेकिन सलात (नमाज़) में जरूरी नहीं।

अ – फिर क्या जाइज़ है?

ब – जाइज़ भी नहीं।

अ – जब आप सल्ल. नमाज़ में सलाम का जवाब नहीं देते थे। जैसा कि अब्दुल्लाह इब्ने मसउद रजि. ने सलाम कहा और आप सल्ल. ने जवाब नहीं दिया और नमाज़ में सलाम का जवाब देना जाइज़ भी नहीं, तो फिर नमाज़ में आप सल्ल. को सलाम कहना कैसे जाइज़ हो सकता है और आप कैसे कहते हैं कि "अस्सलामु अलैक अय्युहन्नबी" पढ़ना नबी सल्ल. से खिताब है। हालांकि नमाज़ अल्लाह की इबादत है और इसमें किसी से मुखातिब होना जाइज़ नहीं। अगर तश्हहुद वाले सलाम का जवाब नबी सल्ल. नमाज़ में नहीं देते थे तो क्या नामज़ के बाद देते थे।

ब – सुना या पढ़ा तो नहीं कि आप सल्ल. ने नमाज़ के बाद जवाब दिया हो।

अ – जिस सलाम को आप सल्ल. ज़िन्दगी में नहीं सुनते थे, न

सुन कर जवाब देते थे, तो अब जब कि वफ़ात पा चुके हैं, यह कहना कि आप सुनते हैं और सुन कर जवाब देते हैं कितना गलत है। जब सहाबा रजि. आप की ज़िन्दगी और मौजूदगी में यह अल्फाज़ आप सल्ल. को सुनाने के लिए नहीं कहते थे तो अब हम जबकि आप फौत हो चुके हैं आपको सुनाने के लिए कैसे कह सकते हैं? जिस सलाम का जवाब दिया ही न जाए, न नमाज़ में और न नमाज़ के बाद, न ज़िन्दगी में न ज़िन्दगी के बाद, वह सलाम दुआ तो हो सकता है लेकिन सलामे तहय्या नहीं हो सकता। क्योंकि इसलिए कि सलामे तहिय्या का जवाब देना फर्ज है। क्योंकि "जब तुम को सलाम किया जाए तो उससे बहतर जवाब दो या उसी को लौटा दो।" (निसा–आयत–86) जब तशह्हुद वाले सलाम का जवाब नबी सल्ल. ने कभी दिया ही नहीं तो मालूम हुआ की वोह सलाम ही नहीं कि जिसे आप सुनें और जवाब न दें। अगर यह अल्फाज़ सलाम के लिए हैं तो सहाबा किराम जो आप के पीछे नमाज़ पढ़ा करते थे। सलाम तो शुरू में मुलाकात के वक्त किया जाता है न कि बातचीत के बीच या आखिर में। जब यह सलाम शुरू नमाज़ में नहीं बल्कि नमाज़ के आखिर या बीच में है तो ज़ाहिर है कि नबी सल्ल. से खिताब नहीं बल्कि अल्लाह की जनाब में अल्लाह के किसी पिछले खिताब की हिकायत है। जिस को बरकत के लिए हम बतौर दुआ पढ़ते हैं। फिर उसके बाद दुरूद शरीफ है उसमें भी नबी सल्ल. से खिताब नहीं बल्कि अल्लाह से आपके लिए रहमत व बरकत की दुआ है। फिर नमाज़ी की अपने लिए दुआ है। फिर नमाज़ खत्म होती है और यह तरतीब बड़ी बेहतर और नबी सल्ल. की तालीम के मुताबिक है। क्योंकि सबसे पहले "फ़दऊहू मुख्लिसन लहुद्दीन" के तहत " अत्तहियात" पढ़ी जाती है जिसका मंशा खालिस दीन का इज़हार है कि मेरी सब इबादतें अल्लाह ही के लिए हैं। मैं मुश्रिक बिलकुल नहीं।इसके बाद रसूल सल्ल. के लिए दुआ है। क्योंकि उनका हक़ पहले है, उनके बड़े एहसान है उम्मत पर। फिर नमाज़ी अपने लिए दुआ करता है और इस पर नमाज़ को खत्म कर देता है। इस तशरीह (विवेचना)से यह साबित हुआ कि हम "अस्सलामु अलैक अय्युहन्नबी" न नबी सल्ल. को सुनाने के लिए कहते हैं और न वह सुनते हैं लिहाज़ा आपका "अस्सलातु वस्सलामु अलैक या रसूलुल्लाह" कहने के लिए इसे दलील बनाना सही नहीं।

ब – जब आम मुर्दों को "अस्सलामु अलैकुम या अहलल कुबूर" कह सकते हैं तो नबी सल्ल. को "अस्सलातु वस्सलामु अलैक या रसूलुल्लाह क्यों नहीं कह सकते हैं?

अ – "अस्सलामु अलैकुम या अहलल कुबूर" तो कब्रिस्तान में जा कर कहते हैं न कि घर बैठे। आप ही बताऐं घर से मुर्दों को "अस्सलामु अलैकुम या अहलल कुबूर" कहना क्या ठीक है?

ब – इस तरह तो सलाम कब्रिस्तान जाकर ही किया जाता है।

अ – फिर "आप अस्सलातु वस्सलामु या रसूलल्लाह" घर बैठे ही क्यों कहते हैं?

ब – रसूल सल्ल0 में और आम मुर्दों में तो बहुत फ़र्क है। आम मुर्दों में तो इतनी ताकत नहीं कि वह हर जगह से सुन लें। मगर आप सल्ल. तो हर जगह से सुन लेते हैं। बल्कि आप तो हाज़िर व नाज़िर हैं।

अ – साबित हो गया ना कि जिस हदीस को आप पेश करते हैं उसको आप मानते नहीं। इस हदीस में तो साफ है कि कब्र पर सलाम तो में सुन लेता हूं और दूर का मुझे पहुंचाया जाता है, यानि दूर का में नहीं सुनता। जब दूर का सलाम नहीं सुन सकते तो घर बैठे यह मुरव्वजा सलाम कहना या आप सल्ल. को हाज़िर व नाज़िर समझना कैसे सही हो सकता है।

ब – आप भी तो इस हदीस को नहीं मानते। इसमे साफ है कि जो मेरी कब्र पर आकर सलाम कहता है में उसे सुनता हूं। आप कहते हें वह नहीं सुनते।

अ – हम तो इस हदीस को सिरे से मानते ही नहीं। क्योंकि यह (हदीस) सही नहीं है। हम आपकी तरह नहीं कि आधी जो मतलब की है उसे मान लें और आधी जो खिलाफ कहती है उसे छोड़ दें।

ब – अगर आप इस हदीस को नहीं मानते तो फिर आप सल्ल. की कब्र पर जाकर अस्सलातु वस्सलामु अलैक या रसूलल्लाह क्यों कहते हैं?

अ – जैसे कब्रिस्तान में "अस्सलामु अलैक या अहलल कुबूर"

आम मुर्दों को कह सकते हैं, उसी तरह आप सल्ल. की क़ब्र पर जाकर अस्सलातु वस्सलामु या रसूलल्लाह कह सकते हैं। क्योंकि दोनों दुआएं हैं। वह सलाम नहीं जो किसी से मुखातिब हो कर किया जाता है।

ब – जब आपकी कब्र पर जाकर सलाम कहा जाता है तो उसका मतलब यह है कि आप सुनते हैं। अगर आप सुनते न होते तो इस तरह सलाम क्यों कहा जाऐ।

अ – यह सलाम आप सल्ल. को सुनाने के लिए नहीं कहा जाता और न ही आम कब्रों पर सलाम आम मुर्दों को सुनाने के लिए कहा जाता है। क्योंकि न आम मुर्दे सुनते हैं और ना ही आप सल्ल0।

ब – फिर उन्हें पुकार कर सलाम क्यों किया जाता है।

अ – पुकार कर सलाम उनको सुनाने के लिए नहीं किया जाता। बल्कि अपने दिल को मुतवज्जेह और नरम करने के लिए किया जाता है। हम उनको मुर्दा मानते हुए ज़िन्दा तसव्वुर करके सलाम दुआ कहते हैं। ताकि दिल हाज़िर हो, मरे हुए लोगों से मुखातिब हो कर सलाम कहना ऐसा ही है जेसे कोई अपने फौत हो चुके अजीज की लाश से बातें करे, बेटा मर जाता है तो बाप उसे कहता है बेटे तुम ही तो मेरे बुढ़ापे का सहारा थे वगैरह। हालांकि बापको यकीन होता है कि बेटा मेरी कोई बात नहीं सुन रहा। लेकिन फिर भी वह उसे खिताब करके अपने दिलकी भड़ास निकालता है। इसीलिए हुक्म है कि हम भी फौत हो चुके लोगों को मुखातिब के सिअग़े से ज़िन्दों की तरह सलाम दुआ दें। ताकि दिलपर उनकी याद का असर हो। उनका अदब व एहतराम भी ज़िन्दों की तरह करें। उनको गुसल दें तो आराम से रखें, या उठाएं तो अराम से। इसीलिए रसूल सल्ल0 ने फरमाया मुर्दे की हड्डी तोड़ना ज़िन्दों की हड्डी तोड़ने जेसा है। मुर्दे अगरचे मुर्दे हैं। न सुनते हैं, न कुछ कर सकते हैं। लेकिन उनके साथ ऐसा सुलूक करने का हुक्म है जैसे कि वह ज़िन्दा हों। इसमें उनका अदब व एहतराम भी है और हमारे लिए दिल को नरम करने का सामान भी। मुर्दों को ज़िन्दा फर्ज़ कर लेना ऐसा ही है जैसे किसी नेक और बुजुर्ग शख्स को बाप की तरह समझ लेना और फिर उससे बाप वाला सुलूक करना या किसी शरीफ लड़के को बेटा समझना और बेटा कहना।

हालांकि हकीकत में न वह बाप है न यह बेटा। समझ लेना या फर्ज कर लेना और बात है और हकीकत होना और बात है।

ब – फिर इस हदीस के बारे में आप क्या कहेंगे। इसमें तो नबी सल्ल. ने साफ फरमाया है कि जो मेरी कब्र पर आकर सलाम कहता है, में उसे सुनता हूं।

अ – भाई मेरे! यह हदीस न तो सही है और न ही किसी के लिए काबिले कुबूल। यह तो बरेलवी हज़रात को भी कुबूल नहीं क्योंकि वोह कहते हैं कि नबी सल्ल. पास व दूर हर जगह से सुनते हैं। बल्कि आप सल्ल. को हाज़िर व नाज़िर और आलिमुलगैब कहते हैं। हालांकि यह हदीस बताती हैं कि नबी सल्ल. करीब से सुनते हैं और दूर से नहीं सुनते। अगर बरेलवी हज़रात किसी हदीस को मानते होते तो अस्सलातु वस्सलामु अलैक या रसूलल्लाह का झगड़ा भी खत्म होता और इल्मे ग़ैब और हाज़िर नाज़िर का भी। यह हदीस और लोगों को भी कबूल नहीं कि क्योंकि वो कहते हैं कि नबी सल्ल. वफात पा चुके हैं अब न करीब से सुनते हैं और न दूर से। जिस जगह से भी सलात व सलाम पढ़ा जाए फ़रिश्ते जो इस काम पर मामूर हैं वह आप सल्ल0 तक पहुचां देते हैं।

ब – यह हदीस सही क्यों नहीं?

अ – इस में एक खराबी तो यह हैं कि अला बिन अम्र और मोहम्मद बिन मरवान अल सुद्दी (यह दोनों) रावी ज़ईफ हैं खासकर मोहम्मद बिन मरवान अल सुद्दी के बारे में तो कहा जाता है कि वह झूठ बोलता और झूठी हदीसें गढ़ा करता था। कभी कुछ कह देता था और कभी कुछ। इससे दो रिवायतें मरवी हैं एक में कहता है– "कब्र का सलाम आप सल्ल. खुद सुनते हैं और दूसरी में कहता है कि कब्र का सलाम फ़रिश्ते पहुंचाते हैं।"

यह दोनों रिवायतें इमाम बैहकी रह0 ने नकल की हैं और दोनों का रावी यही है। इसके अलावा यह हदीस इसलिए भी गलत है कि यह और बहुत सी सही अहादीस के खिलाफ है।

(1) चुनांचे एक हदीस जो अबू हुरैरा राज़ि0 से मरवी है उसके अलफाज़

यह हैं कि अपने घरों को कब्रें न बनाओ (उनमें नवाफिल पढ़ा करो) और मेरी कब्र पर मेला न करो (न सलात व सलाम के लिए और न उर्स व कव्वाली के लिए) बल्कि मुझ पर दुरूद पढ़ा करो। क्योंकी तुम्हरा दुरूद मुझे पहुंचा दिया जाता है, जहां कहीं भी तुम हो।" (अबूदाऊद–मुसनद अहमद)

(2) दुसरी हदीस के अल्फाज़ यह हैं "अल्लाह ने रूए ज़मीन पर फ़रिश्ते छोड़ रखे हैं जो मेरी उम्मत का सलाम मुझ तक पहुंचाते हैं।" (मुसनद अहमद–हाकीम–इब्ने हिब्बान–नसाई– दारमी)

(3) तीसरी हदीस–हसन बिन अली रज़ि का बयान है कि अल्लाह के रसूल सल्ल0 ने फरमाया मेरी कब्र पर मेला न करना और न अपने घरों को कब्र बनाना तुम्हारा सलाम मुझे पहुंचाया जाता है जहा कहीं भी हों। (अबू यअ़ला अल मुसली)

(4) सहल बिन सोहैल रह0 का बयान है कि हसन बिन हसन रह. ने हज़रत फ़ातिमा रज़ि के घर में शाम का खाना खाते हुए मुझे नबी सल्ल. की कब्र के पास खड़े हुए देखा और आवाज़ दी की आइये खाना खाइये। मैंने कहा कि दिल नहीं चाह रहा। फिर मुझसे पूछा की नबी सल्ल. की कब्र के पास किस लिए खड़े थे। मैंने कहा कि सलाम कह रहा था। वह बोले तुम मस्जिद में दाखिल हो तो सलाम कह लिया करो, सलाम कहने के लिए कब्र पर आने की ज़रूरत नहीं। फिर आपने यह हदीस सुनाई जमावड़ा करके मेरी कब्र को मेला (गाह) न बनाना। अपने घरों में नमाज़ पढ़ते रहना। उन्हें कब्र न बनाना कि जहां नमाज़ अदा नहीं की जाती और मुझ पर दुरूद पढ़ते रहना। तुम्हारा दुरूद जहां भी तुम होगे मुझे पहुंच जाएगा। अल्लाह यहुद व नसारा पर लानत करे उन्होंने नबियों की कब्रों को इबादत–गाह बना लिया। सलात व सलाम कहने में तुम जो मदीने में हो और वह जो स्पेन में हैं बराबर हैं। (सुनन–सईद बिन मन्सूर)

ब – आप तो इस हदीस को गलत बता रहे हैं हालांकि यह हदीस बहुत मशहूर है।

अ – लोगों में मशहूर हो जाने से कोई बात हदीस नहीं हो जाती। लोगों में तो बहुत सी बातें मशहूर हो जाती हैं। जब की वह गलत होती हैं।

ईसा अलैहि0 का सूली पर चढ़ाया जाना कितना मशहूर है? जबकि कुरआन की रू से बिल्कुल झूठ है। इसी तरह कई रिवायतें हैं जो लोगों की ज़ुबानों पर आम हैं। और जिन्हें एक गिरोह के उलेमा झूम–झूम कर बयान करते हैं। बिल्कुल मौज़ूअ (मनघड़त) और झूठी हैं। जैसे कि:

(1) ऐ "नबी सल्ल. अगर मैं तुम्हें पेदा न करता तो ज़मीन व आसमान को भी न करता।"

(2) "अल्लाह ने सबसे पहले मेरे नूर को पैदा किया।"

(3) "मैं उस वक्त भी नबी था जब आदम अलैहि. पानी और मिट्टी के बीच थे (यानि पैदा न हुए थे)"

(4) "मैं अल्लाह के नूर में से एक नूर हूँ। वगैरह–वगैरह।

ब – इन रिवायतों को तो बड़े–बडे उलेमा बयान करते हैं।

अ – ईसा अलैहि. को सूली पर चढ़ाये जाने को भी ईसाईयों के बड़े–बड़े पादरी, पोप और राहिब ही तो बयान करते हैं। क्या उनके बयान करने से यह बात सही हो जाएगी कि ईसा अलैहि. सूली पर चढ़ाये गये। असल में जब जेहालत आम होती है तो अक्सर मौलवी भी अवाम जैसे ही हो जाते हैं। किसी कौम को ज़वाल (पतन) आता ही तब है जबकि अवाम के साथ उनके उलेमा भी जाहिल और मुक़ल्लिद हो जाते हैं। तहक़ीक़ का माद्दा उनमें नहीं रहता। बस लकीर के फ़कीर बन कर रह जाते हैं।

ब – इस हदीस को तो आपने गलत बता दिया लेकिन उस हदीस का क्या जवाब देंगे जो मिश्कात शरीफ में इन लफ्ज़ों में मौजूद है "जो मुसलमान मुझ पर सलाम भेजता है। अल्लाह मेरी रूह मुझ पर लौटा देता है। हत्ताकि मैं उसका जवाब देता हूँ।" इस हदीस में सराहत है कि रसूल सल्ल. हर सलाम कहने वाले को जवाब देते हैं। ज़ाहिर है सुन कर ही जवाब देते होंगे? जिससे आप सल्ल. का ज़िन्दा होना साबित होता है।

अ – इससे आप सल्ल. का कब्र में ज़िन्दा होना या सलाम सुनना कैसे साबित हो गया? बल्कि इससे तो यह साबित हुआ कि आप कब्र में ज़िन्दा नहीं हैं। वरना जवाब के वक़्त रूह लौटाने का क्या मतलब। क्या ज़िन्दा शख्स के जिस्म में भी रूह लौटाई जाती है?

ब – सलाम तो हर वक्त कोई न कोई भेजता ही रहता है और हर वक्त आप जवाब देते रहते हैं। इसलिए रूह हर वक्त आपके जिस्म में रहती है, जिससे ज़िन्दगी साबित होती है। जब ज़िन्दगी साबित हो गई तो सुनना भी साबित हो गया।

अ – जब रूह हर वक्त जिस्मे अतहर में रहती है तो जवाब के वक्त रूह लौटाने का क्या मतलब। हदीस तो रूह लाटाये जाने की बात कर रही है और आप कह रहे हैं कि वह हर वक्त जिस्म में रहती है। इसी से आप दुनियावी ज़िन्दगी साबित कर रहे हैं। यह तो बताईये कि वफात के बाद आप सल्ल. का जिस्मे मुबारक जब 32 घण्टों तक बाहर रहा इस बीच के सलामों का जवाब देने के लिए रूह आपके जिस्म में लौटाई गई और आप ज़िन्दा हुए या इस अरसे में सलात व सलाम भी किसी ने नहीं पढ़ा कि जवाब देने की नौबत आती और रूह लौटाई जाती और आप सल्ल. ज़िन्दा होते।

ब – उस वक्त अभी आप दफन भी नहीं हुए थे लिहाज़ा सलाम और उसके जवाब का सवाल ही पैदा नहीं होता।

अ – क्या सलाम का जवाब देना आप सल्ल. पर दफन होने के बाद फर्ज़ हुआ? ज़िन्दगी में या कब्र के बाहर जितना अरसा आप का जिस्मे अतहर रहा सलाम का जवाब देना आप पर फर्ज़ ही न था? आप सल्ल. की ज़िन्दगी में सहाबा रजि. जो कई जगह फैले हुए थे वह सलात व सलाम पढ़ते थे या नहीं? अगर पढ़ते थे तो आप सल्ल. उनका जवाब देते थे?या आपकी ज़िन्दगी में या मौत के बाद दफन होने तक जितने सलात व सलाम पढ़े गये सब बिना जवाब के ही रह गए।

ब – जवाब तो आप (सल्ल.) देते होंगे।

अ – हज़ारों सहाबा के सलाम का जवाब आप ज़िन्दगी में कैसे देते थे। कोई सहाबी कहीं था और कोई कहीं। कोई किसी वक्त पढ़ता था और कोई किसी वक्त। आप सल्ल. सोते भी थे। इबादत भी करते थे और इस्लामी हुकूमत के कामकाज भी देखते थे। सबके सलाम का जवाब आखिर वह कैसे देते थे? क्या जब आप नींद में होते थे तो क्या सलाम का जवाब देने के लिए आपको जगाया जाता था?

ब – यह तो अल्लाह ही बहतर जानता है।

अ – आप भी कमाल के आदमी हैं। रसूल सल्ल. की दुनियावी ज़िन्दगी जब आपके सामने है और जिसे आप समझ भी सकते हैं। उसमें सलाम के जवाब देने को आप नहीं समझते। और कहते हैं अल्लाह बहतर जानता है। बरज़खी ज़िन्दगी जिसके बारे में अल्लाह फरमाता है कि तुम उसको समझ ही नहीं सकते। उसमें सलामों का जवाब देने को आप खूब समझ गये।

ब – दुनिया में आपको बहुत मसरूफियत थी। पता नहीं आप दूर व नज़दीक के सलामों का जवाब कैसे देते थे। लेकिन कब्र में तो वह मसरूफियत नहीं। अब तो आप हर एक का सलाम सुनकर जवाब दे सकते हैं।

अ – वफात हो जाने के बाद जो आप 32 घण्टे कब्र के बाहर रहे इस अरसे में भी आप को दुनिया वाली कोई मसरूफियत नहीं थी। क्या इस बीच में आपने सहाबा के सलामों को सुन कर जवाब दिया? अगर जवाब दिया तो क्या आपकी रूह लौटाई गई थी और आप ज़िन्दा हो गये थे? और क्या आपने जिन्दा इन्सानों की तरह सलाम सुन कर उसका जवाब दिया था?अगर ऐसा हुआ था तो सहाबा ने आपको ज़िन्दा देखने के बाद दफन कैसे (क्यों) कर दिया? और अगर आप इस बीच में ज़िन्दा ही नहीं हुए थे तो उसकी क्या वजह थी? क्या उस वक्त रूए ज़मीन पर कोई सलाम कहने वाला ही नहीं था? या उन्हें सलाम कहने से रोक दिया गया था? या इस अरसे के सलामों का जवाब देने के लिए रूह लौटाई ही नहीं गई और न आप ज़िन्दा हुए। हम यही कहते हैं कि मौत के बाद बरज़ख में रूह लौटाने से इन्सान ज़िन्दा नहीं होता और अगर रूह लौटाई नहीं गई हालांकि इस अरसे में यकीनन बहुत से सलाम किये गये होंगे तो फिर उन सलामों का क्या हुआ? क्या उनका जवाब ही नहीं दिया गया? और यह हो नहीं सकता और अगर जवाब दिया गया तो किसी वक्त बाद में। तो यही हम कहते हैं कि आप सल्ल. पर जितने सलाम पढ़े जाते है वोह सलाम सब दुआ होते हैं उनका सुनना और उसी वक्त जवाब देना ज़रूरी नहीं। बल्कि अल्लाह के फ़रिश्ते जो इस काम पर मामूर हैं उन तमाम सलामों को जब अल्लह चाहता है आप सल्ल. पर पहुंचा देता है और फिर

आप सल्ल. सबके हक़ में जवाबी दुआ दे देते हैं।

यही इस हदीस का मतलब है। इस हदीस से हरगिज़ यह मुराद नहीं कि जैसे ही किसी ने सलाम पढ़ा आप ने सुनकर फौरन जवाब दिया। गोया कि आप सल्ल. हर वक्त सलामों के जवाब देने के लिए इन्तेज़ार में रहते हैं। और सलामों के जवाब देने ही की आपकी ड्यूटी है। न हदीस के यह अल्फ़ाज हैं और न हदीस का यह मक़सद हो सकता है। क्योंकि बहुत सी सही हदीस में यह बात आ चुकी है कि सलाम फरिश्ते पहुंचाते हैं। चाहे कोई दूर से पढ़े या करीब से आपको सुनने और फौरन जवाब देने की तक़लीफ नहीं दी जाती।

ब – आप सलाम नहीं सुनते तो रूह किस लिए लौटाई जाती है?

अ – रूह तो जवाब देने के लिए ही लौटाई जाती है, न कि सलाम सुनने के लिए और जवाब कभी भी दिया जा सकता है। क्योंकि यह सलाम सलामे तहिया नहीं होता कि जिसको सुनकर फौरन जवाब दिया जाए। यह सलाम तो एक दुआ है। जैसे कि खत में अपने किसी अजीज़ को अस्सलामु अलैकुम लिखा जाता है। और जब उसे खत पहुंचता है तो वह भी खत ही के ज़रिये सलाम का जवाब देता है।

ब – रूह तो लौटाई जाती है चाहे जवाब देने के लिए ही सही इसको तो आप मानते हैं?

अ – हाँ, इसे मानते हैं। जो हदीस में आ गया उसे क्यों न मानें लेकिन इसकी हालत और तासीर को हम नहीं जानते क्योंकि यह आलमे बरज़ख का मामला है। आलमे दुनिया में रहते हुए आलमे बरज़ख के हालात को समझना या जानना इन्सानी सोच और पकड़ से बाहर है।

ब – जब रूह लौटाई गई तो ज़िन्दगी तो आ गई क्योंकि ज़िन्दगी नाम है रूह व जिस्म के मिलने का, जब रूह जिस्म में आ गई तो ज़िन्दा तो हो गये।

अ – भाई! यह रूह व जिस्म का मिलन बरज़खी है जिसकी कैफियत हम नहीं समझ सकते। लेकिन यह बात यकीनी है कि बरज़ख में

रूह लौटाई जाने से मुर्दा ज़िन्दा नहीं होता बल्कि मुर्दा ही रहता है। और ज़िन्दगी बरज़खी रहती है। बरज़ख में भी दुनिया की तरह रूह का तअल्लुक जिस्म के साथ बड़ता व घटता रहता है। जैसे दुनियावी ज़िन्दगी में सोने व जागने में इस तअ़ल्लुक की कमी बेशी होती है। इसी तरह बरज़खी ज़िन्दगी में भी बदलाव होते रहते हैं। फिर बरज़ख में ज्सिम और रूह के जुड़ाव की हालत बिल्कुल अलग होती है। दुनियावी ज़िन्दगी में दोनों के तअल्लुक से बिल्कुल अलग।

जागने की हालत में रूह पूरी तरह से जिस्म में होती है और इन्सान के होश व हवास कायम रहते हैं। लेकिन नीन्द की हालत में रूह बहुत हद तक जिस्म से निकल जाती है। मगर मज़बूत तअल्लुक बाक़ी रहता है। जिससे नब्ज़ चलती और इन्सानी मशीनरी काम करती रहती है। इन्सान ज़िन्दा रहता है अगरचे उसके होश व हवास कायम नहीं होते। नीन्द की हालत में इन्सान मौत के काफी करीब होता है। अगरचे मरता नहीं ज़िन्दा रहता है। इसी तरह बरज़ख में भी जब रूह लौटाई जाती है तो इन्सान ज़िन्दा होने के करीब होता है। लेकिन ज़िन्दा नहीं रहता मुर्दा ही रहता है। और इस आलमे दुनिया से बिल्कुल बेखबर और ज़िन्दगी बरज़खी रहती है।

रूह बदन में एक बार दाखिल हो जाने के बाद उससे ला तअ़ल्लुक कभी नहीं होती। जिन्दगी में यह रूह जिस्म के अन्दर रहती है। मरने के बाद हालांकि यह बिल्कुल निकल जाती है। लेकिन तअ़ल्लूक ज़रूर रहता है। कभी कम और कभी ज्यादा। बरज़ख में रूह का लौटाया जाना भी इसी की एक सूरत है लेकिन उससे दुनियावी ज़िन्दगी लाज़िम नहीं आती कि इस दुनिया का शऊर ही बरज़खी ज़िन्दगी के वारदात के इदराक ही में बड़ोतरी होती है। रूह इल्लीयीन में रहे या सिज्जीन में जिस्म से उसका तअ़ल्लुक खत्म नहीं होता। चाहे इस दुनिया मे रहते हुए हम उस बधंन का अन्दाज़ा नहीं कर सकते कि यह गैबियत में से है मगर हम इसका इंकार भी नहीं कर सकते क्योंकि इस बंधन के तहत ही अज़ाबे कब्र होता है जिसका इंकार मुमकिन इसलिए नहीं कि कुरआन व हदीस इस पर गवाह हैं। सही समझ भी यही तकाज़ा करती है कि जब अमल करने में दोनों

शरीक तो बाद मरने के जजा व सज़ा का जो अमल फौरन शुरू हो जाता है उसमें एक को छुट्टी क्यों? मरने के बाद जिस्म व रूह को अल्लाह की नैअमतें मिलती हैं या अज़ाबे इलाही का मज़ा चखना पड़ता है। बरज़ख और आखिरत दोनों जगह रूह व जिस्म एक जगह रहते हैं। अगरचे जिस्म ज़र्रात की शक्ल में तबदील हो जाये।

एक मक्खी का चढ़ावा जहन्नम का सबब बन गया

तारिक़ बिन शहाब रजि. का बयान है कि अल्लाह के रसूल सल्ल0 ने एक दफा दो शख्सों का वाकिआ बयान फरमाया कि एक मक्खी की वजह से एक आदमी जन्नत में गया और एक आदमी जहन्नम में। सहाबा किराम रजि. ने पूछा कि कैसे? आप सल्ल. ने फरमाया दोनों शख्स एक बुत के करीब से गुजरे। बुतपरस्तों ने दोनों को रोक लिया और कहने लगे जब तक हमारे बुत पर कोई चढ़ावा नहीं चढ़ाओगे उस वक्त तक तुम्हें जाने नहीं दिया जायेगा। उन्होंने कहा हमारे पास तो चढ़ावे के लिए कोई चीज़ नहीं है। बुत परस्तों ने कहा एक मक्खी का ही चढ़ावा दे दो। चुनांचे उनमें से एक ने एक मक्खी का चढ़ावा दे दिया। बुत परस्तों ने उसे छोड़ दिया। लेकिन वह शख्स जहन्नम में गया। दूसरे शख्स ने कहा कि मैं तो अल्लाह के सिवा किसी बुत को नहीं मानता मैं कोई चीज़ भी गैरूल्लाह की नज़र देने के लिए तैयार नहीं। उन बुत परस्तों ने उस शख्स को मार डाला। मगर यह शख्स जन्नत में गया। (मुसनत अहमद– किताबुज्जुहद व अबू नईम हुल्सा–जिल्द? सफा 203)

इस हदीस की रोशनी में हमारे वोह भाई व बहनें ज़रूर अपना जाइज़ा ले लें जो मज़ारात पर न सिर्फ रेश्मी गिलाफ़ नज़र करते हैं बल्कि बकरा, मुर्गा, नकदी और सोना–चांदी और ज़ेवरात वगैराह चढ़ावे के तौर पर पेश करते हैं । कहीं उनके इस फेअल से उनकी ज़िन्दगी भर की नमाज़े, रोज़ें, ज़कात और हज रायगाँ और बेकार न हो जाएं?

कब्र वाले न सुन सकते हैं और न कुछ कर सकते हैं।

इमाम अबूहनीफा रह0 का फरमान:

इमामा अबू हनीफा रह. ने एक शख्स को देखा कि वह कुछ नेक

लोगों की कब्रों के पास आकर सलाम करके उनसे कह रहा है। ऐ कब्र वालो तुम्हें कुछ खबर भी है और क्या तुम्हें कुछ असर भी होता है। मैं तुम्हारे पास कई महीनों से आ रहा हूं। और तुम्हें पुकार रहा हूँ। मेरा तुम से सवाल सिवाय दुआ करने के और कुछ नहीं। तुम मेरे हाल को जानते हो या मेरे हाल से बेखबर हो? इमाम अबू हनीफा रह0 ने उसकी यह बात सुनकर उससे पूछा क्या इन कब्र वालों ने तेरी बात का जवाब दिया? उसने कहा नहीं आप रह0 ने फरमाया तुझ पर फटकार हो, तेरा हाथ खाक आलूदा हो। तू ऐसे (मुर्दो) जिस्मों से बात करता है जो न जवाब देने की ताकत रखते हैं न किसी चीज़ का इख्तियार रखते हैं और न किसी की आवाज़ (फरियाद) ही सुन सकते हैं। फिर इमाम अबु हनीफा रह0 ने कुरआन की यह आयत "वमा अन्ता बि मुस्मइन मन फिल कुबूर" (ऐ! नबी तुम उन्हें नहीं सुना सकते जो कब्रों में हैं) (फ़ातिर–आयत–22) पढ़ी (ग़राइब–फ़ी तहक़ीक़ अल मज़ाहिब) अनुवादक – अब यह तो हनफी हज़रात ही जानते हैं कि वह इमाम अबु हनीफा रह0 के इस साफ फरमान के खिलाफ अमल करके अपने अकीदे और आमाल को बरबाद कर रहे हैं या अपने आमालनामे को नेकियों और सवाब से भर रहे हैं?

कब्रों पर चढ़ावे हराम और बातिल हैं।

मुर्दो को मुतर्सिर अल उमूर समझना कुफ्र है।

फिक़्ह हनफी का फतवा

फ़िक्ह हनफी की मशहूर किताब दुर्रे मुख्तार में है मालूम होना चाहिये कि अक्सर अवाम जो मुर्दो के नाम पर नज़रो नियाज़ देते हैं। चढ़ावे चढ़ाते हैं और ओलिया किराम का कुर्ब (नज़दीकी) हासिल करने के लिए, नक़दी (माली) नज़राने पेश करते हैं और उनकी क़ब्रों पर चिराग व तेल जलाते हैं वगैरह। यह सब चीज़े बिल–इज्माअ बातिल और हराम हैं (किताबुस सोम–जिल्द 2–सफा–253) दुर्रे मुख्तार की मशहूर शरह रद्दुलमुख्तार (अल मारूफ फतावा शामी) में इसकी शरह इस तरह की गई कि गैरुल्लाह की इस नज़र के बातिल और हराम होने की कई वजूहात हैं। जिनमें से एक यह है कि यह कब्रों क़े चढ़ावे वगैरह मख़लूक के नाम की नज़रें हैं। और मखलूक के नाम की नज़र जाइज़ ही नहीं। इसलिए की

(नज़र भी) इबादत है और इबादत किसी मखलूक की जाइज़ नहीं और एक दूसरी वजह यह है कि (जिस के नाम की नज़र दी जाती है) वह मुर्दा है और मुर्दा किसी चीज़ का इख्तियार नहीं रखता। तीसरी वजह यह है कि नज़र देने वाला शख्स मुर्दों के बारे में यह अकीदा रखता है कि अल्लाह के अलावा वो भी कायनात में तसर्रुफ करने का इख्तियार रखते हैं। हालांकि मुर्दो के बारे में ऐसा अकीदा रखना भी कुफ्र है। (रद्दुल मुख्तार, जिल्द–2, पेज–439 मिसरी)

फ़तावा आलमगीरी का फ़तवा

फ़तावा आलमगीरी जिसे पांच सो हनफी उलेमा ने मिलकर तरतीब दिया है और जिसके निफाज़ (लागू करने) का मुतालबा ज़ोर–शोर से (पाकिस्तान में) किया जा रहा है, में लिखा है– अक्सर अवाम में जो यह रिवाज़ है कि वो किसी नैक आदमी की कब्र पर जा कर नज़र मानते हैं कि ऐ फलां बुजुर्ग अगर मेरी हाजत पूरी हो गई तो इतना–इतना सोना (या कोई और चीज़) तुम्हारी कब्र पर चढ़ाऊंगा, यह नज़र बिलइज्मा बातिल है।

फिर लिखा है– पस जो दीनार व दिरहम या और चीज़ें औलिया किराम की कब्रों पर उनका कुर्ब हासिल करने (उनको राज़ी करने) के लिए पेश की जाती हैं, वो बिल्इज्मा हराम है। (फ़तावा आलम गीरी–बाब अल–एतेकाफ जिल्द–2–पेज–39)